Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

लर्निंग कर्व

हिन्दी अंक 9 : मार्च, 2015

शाला में समर्थकारी वातावरण का निर्माण



सम्पादन
चन्द्रिका मुरलीधर
इन्दुमति एस.
मधुमिता सुधाकर
प्रेमा रघुनाथ
सैलेन राउत्रे

सलाहकार
रामगोपाल वल्लत
एस. गिरिधर
उमाशंकर पेरिओडी

हिन्दी अनुवाद
रमणीक मोहन
नलिनी रावल

हिन्दी अंक सम्पादन
राजेश उत्साही

डिजायन
पेंटागन कम्युनिकेशन प्रा.लि.
+91 080 22212942/946

मुद्रक
एससीपीएल डिजायन, बेंगलूरु - 560 062
+91 80 2686 0585, 98450 42233
www.scpl.net

कृपया ध्यान दें: इस अंक में प्रकाशित लेख मूलतः लर्निंग कर्व (अँग्रेजी) XXI, दिसम्बर 2013 के लेखों के हिन्दी अनुवाद हैं। लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं, उनसे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

''लर्निंग कर्व अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का एक प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक–अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर–सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''

सम्पादक की ओर से



स्कूल समाज का ही एक छोटा रूप है और उसके कई बहुत महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक बच्चों को इस लायक बनाने का काम है कि वे बेहतरीन नागरिक बनने में समर्थ हो पाएँ। शब्दकोश 'समर्थ बनाने' को 'शक्ति, साधन या सामर्थ्य देना; योग्य बनाना, अधिकार देना, सम्भव या आसान बनाना' के रूप में परिभाषित करता है (रैण्डम हाउस शब्दकोश में दिए अर्थ का अनुवाद)। इस अंक में हमने इस प्रक्रिया का हिस्सा रहे, देश भर से कार्यरत शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा अनुभवों को याद करते हुए लिखे गए लेख एकत्र करने का प्रयास किया है – इनमें से एक तो दूर–दराज लेह की 12,000 फीट की ऊँचाई के स्कूल से आया लेख भी है।

औपचारिक शिक्षा और स्कूल एक–दूसरे के पर्यायवाची की तरह ही हैं, इसलिए शिक्षकों को स्वाभाविक सक्षमकर्ताओं के तौर पर देखा जाता है। सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में कई कारक बाधक होते हैं। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण बाधा कई कारणों से हो सकती है – जैसे कि गरीबी, स्कूल का किसी मुश्किल जगह पर स्थित होना, प्रवास, अशक्त होने की अवस्था, सामान्य सहूलियात की कमी आदि। इनमें से प्रत्येक स्वयं में चिन्ता का विषय है और कई बार ये सब मिलकर एक बच्चे को बिल्कुल उसके द्वार पर मौजूद चीज से भी वंचित रखते हैं।

इसलिए जब हम वाक्यांश 'समर्थ बनाने वाला' को स्कूली शिक्षा में एक सूचक के तौर पर प्रयोग करते हैं तो इसे उन युवाओं की आवश्यकताओं को सम्बोधित करने वाली सशक्तीकरण की बहुआयामी, व्यापक गतिविधियों की लड़ी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिन्हें जीवन की दक्षताएँ हासिल करने में बाधाओं और अकादमिक दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। स्कूल द्वारा समुदाय से सम्बन्ध स्थापित किया जाना है – यह विचार तो स्वयंसिद्ध ही है; विशेष तौर पर 'समर्थ बनाने' के विचार के सन्दर्भ में तो यह सबसे उपयुक्त लगता है – क्योंकि यदि इस विचार को व्यावहारिक रूप देना है तो जिस समुदाय के लिए वह है, उसकी सम्बद्धता तो आवश्यक हो ही जाती है। तमाम किस्म के अकादमिक, व्यवहार सम्बन्धी, भावनात्मक और स्वास्थ्य सम्बन्धी अनुभवों को उन्नत करने के लिए समुदाय की भागीदारी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार की भागीदारी से कक्षा में ज्ञान–सृजन के लिए किए गए प्रयासों को तथा बच्चे और उसके परिप्रेक्ष्य की फौरी आवश्यकताएँ पूरा करने की कोशिशों को सहज ही बढ़ावा मिलेगा – और स्कूल के लक्ष्यों में घर–परिवार की सक्रिय भागीदारी को भी।

इसके बाद इस पर विचार होना स्वाभाविक ही है कि स्कूल क्या कर सकता है जिससे बच्चे स्वयं को कक्षा में हो रहे शिक्षार्जन का हिस्सा महसूस कर पाएँ। समर्थ बनाए जाने की आदर्श स्थितियाँ हों तो प्रत्येक बच्चा इसके लिए प्राथमिक जिम्मेदारी लेगा। स्कूल की एक सामूहिक दृष्टि हो सकती है – और होगी – लेकिन उस दृष्टि के हिस्सों की सफलता, प्रत्येक बच्चे का लक्ष्य और उद्देश्य (जिसे ध्वनि दी गई हो चाहे नहीं) स्कूल के प्रत्येक सदस्य पर निर्भर होंगे। यह बहुत स्पष्ट है कि स्कूल के वातावरण (जो अकसर उसके मुख्य द्वार से ही दिखाई देने और महसूस होने लगता है) और उसके विद्यार्थियों की उपलब्धियों के बीच एक रिश्ता होता है। और यह अब एक जाना–माना, बहुत अच्छे से दर्ज हो चुका तथ्य है कि विशेष तौर से सरकारी स्कूलों में ड्रॉप–आउट निराशाजनक हद तक ऊँचा है। इसके कई कारण हो सकते हैं – घर से स्कूल की दूरी, अकादमिक असफलता, खासतौर से किशोरियों के लिए अपर्याप्त सुविधाएँ आदि। लेकिन असल कारण परिवार की आशाओं और मिल रही शिक्षा के बीच सुमेल का न होना हो सकता है क्योंकि केवल साक्षरता और अंक–ज्ञान ही स्वयं में विद्यार्थियों को समर्थ बनाने के लिए काफी नहीं होते। वास्तव में तो कई बार इसके उलट घटित हो सकता है, जब विद्यार्थियों को न तो रोजगार पाने के लिए सशक्त किया जाता है और न ही वे धीरज के साथ वापिस अपने परिवार तथा परम्परागत व्यवसायों की ओर लौट पाते हैं। समर्थ होने की प्रक्रिया का एक हिस्सा शिक्षकों और अभिभावकों की हिस्सेदारी से इनमें से कुछ कारणों को दूर करने या स्थितियों में सुधार लाने की कोशिश से सम्बद्ध है।

हमारी कक्षाओं में एक अन्य चुनौती उन्हें पढ़ाने की है जिनकी घर की भाषा शिक्षण में प्रयोग होने वाली भाषा नहीं है और जिन्हें प्रतिदिन विभिन्न विषयों में इन दोनों भाषाओं के बीच तालमेल बैठाने की मुश्किलों का सामना

करना पड़ता है। अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों में शिक्षा हासिल करने को बेहतर जीवन तक पहुँच बनाने के लिए एक पासपोर्ट की तरह देखा जाता है। सक्षमता हासिल करने की यात्रा का एक हिस्सा इस इच्छा का सामंजस्य कम से कम प्राइमरी स्कूल के स्तर पर विद्यार्थी के घर की भाषा में शिक्षा के स्वाभाविक फायदों के साथ स्थापित करने का है। यह भारत की स्थितियों की खास विशेषता है जहाँ बेहतरी के लिए दृढ़–संकल्प बड़ी संख्या में महत्त्वाकांक्षी नौजवानों को विश्वविद्यालय–स्तर पर पहुँचकर बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

स्कूल का कोई स्थिर अस्तित्व नहीं होता। वह समय के साथ बदलता है – उसे ऐसा करना ही होता है वरना वह कालसंगत नहीं रहेगा, पुराने काल में जड़ हो जाएगा, और यह जोखिम वह नहीं उठा सकता। यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह उससे की जा रही आशाओं पर खरा उतरे, आवश्यक है कि उससे सम्बद्ध सब लोग, चाहे वे शिक्षक हों या विद्यार्थी, माता–पिता या स्कूल की कमेटी, बदलाव के लिए काम करें – रास्ते में आने वाली बाधाओं को चिह्नित करते हुए उनसे पार जाएँ। सामाजिक मूल्य और उद्देश्य एक स्कूल की संस्कृति का मुख्य अंश होते हैं और यह बहुत सम्भव है कि मुझ समेत विद्यार्थियों की कई पीढ़ियों की प्रगति में इस वजह से बाधा आई हो कि वे किसी अन्य समाज की भेंट का हिस्सा थे। लेकिन अब हम अधिक आशावादी हो सकते हैं क्योंकि व्यवस्था को अब भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जा रहा है। इस अंक के लेख दायित्व के प्रति जागरूक नागरिक वर्ग के माध्यम से, इस प्रक्रिया में समुदाय को शामिल करते हुए, सशक्तीकरण के केन्द्रीय मसले को विस्तार देते हैं। ऐसे लेख भी हैं जो विद्यार्थियों और शिक्षकों द्वारा मिलकर समस्याओं और सरोकारों को जाँचते–परखते हुए आपसी सहयोग से सीखने में मददगार तरीकों की बात करते हैं और बातचीत–चर्चा के माध्यम से नजरियों में आए बदलाव की बात भी। एक लेख तो सीखने की प्रक्रिया पर स्कूल की भवन–निर्माण कला के प्रभाव की बात भी करता है और हमें फिर से उस बात का एहसास होता है जो हम पहले से जानते हैं–कि हम अपने आसपास के वातावरण के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक ढंग से प्रतिक्रिया देते हैं।

हम लेखों के बारे में पाठकों से मिलने वाली प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा में रहेंगे और आशा करते हैं कि आप हमें विद्यार्थी और शिक्षक, दोनों तौर पर अपने अनुभवों की उस यात्रा के बारे में बताएँगे, जिसके चलते आप अपने स्कूल में समर्थ बन पाए, और जो अन्ततः आपको एक लोकतान्त्रिक और धर्मनिरपेक्ष समाज की ओर ले गई।

प्रेमा रघुनाथ
सम्पादक, लर्निंग कर्व,
prema.raghunath@azimpremjifoundation.org
अनुवाद : रमणीक मोहन

इस अंक में

खण्ड अ : परिप्रेक्ष्य

खण्ड ब : अनुभव और अन्तर्दृष्टि

खण्ड स : विद्यार्थियों की आवाज

परिप्रेक्ष्य



बाहर के बिना

जेन साही

टैगोर से पूछा गया कि उन्होंने स्कूल क्यों खोला। उनका जवाब था कि अपने संक्षिप्त स्कूली अनुभव की उनकी दुखद यादें एक ऐसी जगह की थीं जहाँ उन्हें ऊँची खिड़कियों, बेंचों की लम्बी कतारों और खाली दीवारों वाले एक कमरे तक सीमित कर दिया जाता था। जब वे यह याद करते तो उनके मन में प्रबल इच्छा पैदा होती कि वे बच्चों को आजादी का एहसास और प्रकृति का अनुभव हासिल करने का मौका दे पाएँ।[1] स्कूल अकसर भौतिक और मानसिक, दोनों स्तरों पर सीमित–संकुचित से स्थान होते हैं जहाँ कल्पना को उत्साहित–प्रेरित करने या शरीर को हरकत में लाने के लिए कोई विशेष उत्प्रेरक मौजूद नहीं होते। घर और गाँव की दुनिया कक्षा के कमरे की बन्द, भीड़दार, गैर–दोस्ताना जगह से बिल्कुल अलग होती है।

एक स्कूल में प्रकट और कम प्रकट तत्वों की कई परतें परस्पर निर्वाह की स्थिति में रहती हैं – इनमें स्वयं इमारत का ढाँचा और भौतिक वातावरण; अपने–अपने विशेष अनुभव और संवेदनशीलता लिए हुए बच्चे और शिक्षक; घर और समुदाय के बिल्कुल आसपास की भाषा, इतिहास और अपेक्षाएँ; तथा उससे भी आगे सम्भावनाओं और सीमाओं का व्यापक संसार शामिल हैं।

मानव शरीर की ही तरह स्कूल में भी एक खास तरह की नाज़ुकता और लचीलापन, दोनों होते हैं। वह एक–दूसरे से जुड़ी, अन्तर्सम्बद्ध कई व्यवस्थाओं पर निर्भर रहता है और एक बहुत ही पतली ऊपरी परत उसके भीतर और बाहर को अलग करती है। इतालवी लेखक प्रिमो लेवी बात करते हैं उस "पर्यावरण व्यवस्था" की "जो, मुझे पता भी नहीं चलता और मेरे अस्तित्व की गहराइयों में बैठा देती है मृत जैविक पदार्थ का भोग करने वाले जीव, रात और दिन के पक्षी, बेलें, तितलियाँ, झींगुर और फफूंद।"[2] टैगोर ने पर्यावरण–विज्ञान की भाषा का प्रयोग तो नहीं किया लेकिन उनमें शिक्षा की प्रक्रिया की अनुभूति मौजूद थी – और यह प्रक्रिया है प्राकृतिक संसार और सम्पूर्ण मानवता के साथ एक होने के बढ़ते एहसास की प्रक्रिया।

चालीस साल पहले जब मैं पहले–पहल बेंगलूरु के बाहरी इलाके में स्थित गाँव सिल्वेपुरा में आई तो गाँव के अधिकतर बच्चे स्कूल नहीं जाते थे। मगर मैंने पाया कि हमारा मकान बनाने वाले राज मिस्त्री, मजदूरों और बढ़ई का काम करने वालों के बच्चे स्कूल जाने की तीव्र इच्छा रखते थे। मैं सोच में थी कि कहीं इन बच्चों के लिए स्कूल का अर्थ बन्द और शोर भरी जगहों तक सीमित होकर तो नहीं रह जाएगा। यह घरों से अन्दर–बाहर आने–जाने की उनकी आजादी और कुछ हद तक गाँव के भीतर–बाहर की आजादी से बहुत अलग बात लगती थी।

इसीलिए स्कूल को ऐसा बनाया गया कि अन्दर–बाहर आजादी से आया–जाया जा सके। दोनों को सीखने–सिखाने के लिए सम्भावनाओं से परिपूर्ण जगहों के रूप में देखा गया।

[1]Rabindranath Tagore, 'My School' in *Personality* pp.119-120. 2002 Edition. New Delhi: Rupa.

[2]Primo Levi, (1981) *The Search for Roots.* p.5. Translated by Peter Forbes (2001), Penguin Books.



यह तो तय है कि एक स्कूल तथा उसकी इमारतों की बुनावट और दृश्य बच्चे और संसार के बीच के रिश्ते को अभिव्यक्त करते हैं। सम्भव है कि टैगोर की यादों में यह अजनबी और प्रतिकूल वातावरण के रूप में रहा हो, लेकिन यही जगह काम करने और खेलने की सम्भावनाओं से पूर्ण, आकर्षण का स्थान भी हो सकती है। हम जानते–समझते हुए बाहर के बरामदों, आँगनों, नीची दीवारों, 'जालियों' आदि को अन्दर की जगह के साथ एकीकृत करते हुए एक ऐसे स्थान की रचना कर सकते हैं कि अन्दर का हिस्सा बाहर से अलग–थलग और कटा न रहे। दीवारों को ढकने के लिए बेलें उगाई जा सकती हैं – इन्हीं बेलों के चलते खेलने या काम करने के लिए छायादार जगह भी मिलेगी। वह चाहे किताबें हों चाहे खेल, चीजें पहुँच के दायरे में रखी जा सकती हैं। दिलचस्पी और सुन्दरता के क्षेत्रों को रचने में बच्चे योगदान दे सकते हैं। नंगी दीवारों को नया रूप दिया जा सकता है – किसी पक्के किस्म के अपरिवर्तनीय प्रिंट से सजा कर नहीं बल्कि उन्हें ऐसे गतिशील, लचीले स्थान बनाकर जहाँ बच्चों के लेखन और चित्रों को प्रदर्शित किया जा सके।

क्या एक बहुत तेजी से बदल रहे समाज में बच्चों के बढ़ने और सीखने के लिए एक स्वस्थ वातावरण रचने हेतु आवश्यक तत्वों को चिह्नित किया जा सकता है? स्कूलों की पुरानी इमारतों का स्थान नई इमारतें ले रही हैं जिनमें अकसर महँगी और टिकाऊ सामग्री का प्रयोग होता है लेकिन जरूरी नहीं है कि यह सामग्री अधिक सुन्दर या कल्याण की दृष्टि से अनुकूल और उपयोगी ही हो। यह एक चुनौती है कि ऐसे डिजाइन विकसित किए जाएँ जिनमें नई सामग्री समेत ऐसी चीजों को प्रयोग किया जाए जो सस्ती और व्यावहारिक तो हों ही, बढ़ते–विकसित होते बच्चों की आवश्यकताओं को भी पूरा कर पाएँ।

ग्रामीण परिवेश के स्कूलों में पेड़ों, बड़े–बड़े पत्थरों और खुली जगह का लाभ मिलता है हालाँकि बहुत बार हम इनके मूल्य और महत्त्व को समझ नहीं पाते हैं। हाल में हुए शोध से यह बात निकलकर आई है कि बच्चे कृत्रिम, स्थाई किस्म के खेल–मैदानों को बहुत खुशी से स्वीकार नहीं करते, फिर वे चाहे बेहतरीन सुख–सुविधा से भी लैस क्यों न हों। बल्कि वे किसी वयस्क की नजर और नियन्त्रण से दूर, लचीले, निजी, जंगलनुमा स्थानों को पसन्द करते हैं जिन्हें वे स्वयं शक्ल दे पाएँ, बदल पाएँ और जिनके लिए वे जिम्मेदार महसूस कर पाएँ।[3] आशा के प्रतिकूल सच यह है कि अकसर आर्थिक तौर पर साधन–सम्पन्न बच्चे अधिक संकीर्ण और सीमाबद्ध जीवन जीते हैं क्योंकि उनके घर और स्कूल, दोनों जगह का वातावरण बहुत नियन्त्रित होता है।

बच्चों को ऐसा स्थान मिलना आवश्यक है जहाँ उनके पास अपने ही रिश्ते–नाते तलाशने और बनाने की गुंजाइश रहे, जहाँ उनका संसार किसी एक विशेष खाने और साँचे में न बँधा हो। लोरिस मलगज़ी एक अति–संस्थागत, अति–निर्धारित परिवेश के प्रभावों को बहुत अच्छे तरीके से सारगर्भित करते हैं :

> वे बच्चे से कहते हैं:
> काम और खेल
> यथार्थ और स्वप्नचित्र
> विज्ञान और कल्पना
> धरती और आकाश
> एक साथ नहीं हैं।[4]

स्कूल का वातावरण अपने आप में एक पूरा संसार होता है जहाँ सीखने की बुनियाद भौतिक, इन्द्रीय यथार्थ में होनी चाहिए जिसके साथ बच्चे सोच के स्तर पर, व्यावहारिकता में और कल्पनाशीलता के साथ सम्बन्ध बना सकें।

[3] Johnson, L.M. (1988) 'The Brook Knolls Cooperative Community: A case study for resident design of public open space', in *Landscape and Urban Planning*, 17, 283-295.See also article by the same author (Johnson), American Playgrounds and Schoolyards – A Time for Change.

[4] Loris Malaguzzi, Hundred Languages of Children: The Reggio Emilia Approach to Early Childhood Education, L. Gandini (ed.). 1998 edition, Elsevier Science

बच्चों को प्रोत्साहित किया जा सकता है कि वे काम, खेल और अध्ययन के जरिए विभिन्न तरह से अपने आसपास के वातावरण के साथ एक सक्रिय सम्बन्ध बनाएँ, बल्कि उसका ध्यान भी रखें। उदाहरण के लिए, जिस स्कूल में मैं काम करती हूँ, बच्चे प्रतिदिन सुबह मुख्य कमरे के बीचोबीच घर या बगीचे से लाई गई चीजों से एक मण्डप बनाते हैं। घास, बीजों, फूलों और पत्तों के डिजाइन हमेशा एक से नहीं होते – वे मौसम तथा बच्चों के चुनाव और प्रतिभा को प्रतिबिम्बित करते हैं। इस गतिविधि के चलते बच्चे प्राकृतिक संसार के परिवर्तनों से तो अवगत होते ही हैं, वे पैटर्न, आकार–प्रकार में समता, रूप–रंग और गठन–बुनावट के बारे में भी सीखते हैं।

सीखने के लिए बगीचा एक समृद्ध संसाधन बन जाता है क्योंकि बच्चे वहाँ खेलते ही नहीं, उसकी देख–रेख भी करते हैं। मसलन, वे बीज की थोड़ी उठी हुई क्यारी के फायदों की तुलना बुआई के अन्य तरीकों के साथ कर सकते हैं या जैविक कूड़े को अलग करके तथा वानस्पतिक खाद बनाकर सीख सकते हैं कि क्या–क्या वस्तुएँ स्वाभाविक तौर पर सड़नशील होती हैं। बच्चे अपने आसपास की प्रकृति में हो रहे विकास तथा क्षय सम्बन्धी परिवर्तनों का अवलोकन और उनका रिकॉर्ड रख सकते हैं – अचानक बारिश होने पर काई का निकल आना, घोंघे की अब से पहले न देखी गई किसी किस्म का दिखाई दे जाना, या यह देखना कि कितनी लम्बी देर के लिए मकड़ी का एक बहुत बड़ा जाला बना रह सकता है – इन सब बातों के चलते बाहर का क्षेत्र सीखने का एक समृद्ध संसाधन बन जाता है।



आवश्यकता यह भी है कि स्कूल बच्चों के उस जीवन के साथ सम्बद्ध हो पाए जो स्कूल के बाहर है। स्कूल में बच्चों की शारीरिक उपस्थिति ही नहीं होती; वे अपने साथ बाहर से हासिल किए गए कितने ही विचार, अनुभव और अनुभूतियाँ लेकर आते हैं। बच्चों को समाचारों के स्वयं चुनाव का मौका मिलना चाहिए और इसका एक तरीका है कि उन्हें डायरी–लेखन का समय मिले। वे चित्र बना सकते हैं, महत्त्वपूर्ण घटनाओं के बारे में लिख सकते हैं या लिखवा सकते हैं। किसी वयस्क को ये घटनाएँ बहुत ही छोटी और महत्त्वहीन लग सकती हैं लेकिन घर में हुआ कोई झगड़ा, नए खरीदे कपड़े, पिल्लों का जन्म, एक तोड़ दिया गया वायदा, डॉक्टर से मुलाकात या एक बस–यात्रा बच्चे के दिमाग पर अंकित होने लायक घटनाएँ हैं। प्रारम्भ से ही भाषा का प्रयोग अनुभवों को साझा करने, अभिव्यक्त करने और विस्तार देने के लिए होना चाहिए।

गाँव और घर के बिल्कुल आसपास का वातावरण बच्चे के सीखने के लिए एक समृद्ध 'पाठ' है। शिक्षण की शुरुआत उन बातों से करते हुए जिनसे बच्चे पहले से अवगत हैं, जिनके साथ वे सहज हैं, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र तथा विज्ञान के संसार उनके लिए खोले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, इतिहास की कक्षा में बच्चों से कहा गया कि वे अपने घर से अपनी दिलचस्पी की कोई एक वस्तु चुनें। चुनी गई वस्तुओं में दरवाजे की चौखट, बन्दूक, सिलाई मशीन और बिना धुएँ का 'चूल्हा' थे। बच्चों ने इन वस्तुओं के बारे में चर्चा की और मिलकर उन वस्तुओं से सम्बन्धित ऐसे प्रश्नों की सूची बनाई जिनके बारे में वे जानना चाहते थे। कई हैरान करने वाले प्रश्न थे, जैसे – "क्या भूतों को बन्दूक से मारा जा सकता है?" दूसरी ओर परम्परागत किस्म के सवाल भी थे – जैसे, ये वस्तुएँ कितनी पुरानी हैं, किस सामग्री से बनी हैं और इनका प्रयोग–उपयोग क्या है। इस गतिविधि ने बच्चों के लिए तथ्य मुहैया करवाए जिससे वे एक समयरेखा बना पाए और भूतकाल का एहसास जगाते हुए जान पाए कि खोजी गई नई सामग्री तथा तकनॉलाजी के नए रूपों के चलते किस प्रकार चीजें बदल गईं।

बच्चे अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन की बातों पर ध्यान देने से शुरुआत कर सकते हैं : मकान किस सामग्री से बना है, वे कैसे कपड़े पहनते हैं, इलाज के लिए क्या कुछ लिया जाता है, वे कैसा भोजन करते हैं। उन्हें स्वयं ही बहुत जल्दी स्पष्ट हो जाता है कि कई बाहरी ताकतें चुनाव और सम्भावनाओं को प्रभावित करती हैं।

सामाजिक अध्ययन का तकाजा है कि हम अपने बीते समय का रूमानीकरण न करें और न ही अपने वर्तमान को बहुत साफ–स्वच्छ–पवित्र रूप में प्रस्तुत करें बल्कि वर्तमान की अनिश्चितताओं और चुनौतियों के साथ जूझने

की कोशिश करें। आसपास के समुदायों में पिछले 10 सालों में जीवन की शैली और गति निर्णायक तौर पर बदल गई है। समुदाय संघर्षरत हैं कि वे सरपट दौड़ते शहरीकरण के मुताबिक स्वयं को ढाल पाएँ। पारिवारिक जीवन के पैटर्न, शिशु–देखभाल की शैलियाँ, मर्द और औरत दोनों के पेशे, खान–पान के तौर–तरीके, टकराव और द्वंद्व को सुलझाने के तरीके तथा मनोरंजन के साधन, सब संक्रमण के दौर में हैं। आस–पड़ोस कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था से अर्ध–शहरी परिवेश में परिवर्तित हो रहा है जो अपने साथ समस्याएँ और लाभ दोनों लाता है।

ये परिवर्तन हम सबके लिए सवाल खड़े करते हैं और बच्चे इस बात के बारे में बहुत जागरूक हैं कि ये उथल–पुथल किस प्रकार उनके जीवन को प्रभावित कर रही है। कचरे को ठिकाने लगाने की बढ़ती समस्या, पानी की जबरदस्त किल्लत या स्थानीय पुलिस की बढ़ती ताकत ऐसे मुद्दे हैं जिनसे सम्बोधित होना बहुत आवश्यक हो गया है – चर्चा और सोच–विचार के स्तर पर भी और विकल्पों के बारे में कल्पना करने के सन्दर्भ में भी।

बच्चे अपने सामने के परिदृश्य में आए बड़े परिवर्तनों का अध्ययन करके अपने गाँव के भविष्य और उसमें अपनी भूमिका के बारे में सोचना शुरू कर सकते हैं। किस प्रकार खेतों का स्थान मकानों के लिए कटे प्लॉटों ने ले लिया है या कैसे तालाब गायब हो गए हैं और उनके स्थान पर ईंटों के भट्टे नजर आने लगे हैं या किस प्रकार खुले कुएँ सूख चुके हैं और मुँह बाए गड्ढे की शक्ल इख्तियार कर चुके हैं।

जैसा कि कहा ही जा चुका है, स्कूल का वातावरण कई परतों से मिलकर बनता है – कुछ स्पष्ट दिखाई देती हैं, कुछ छुपी रहती हैं, और कुछ बहुत हल्के–फुल्के–प्रछन्न रूप में मौजूद। स्कूल का भौतिक वातावरण और उसके आसपास का माहौल इसका एक आयाम है। एक और आयाम है जिसे शायद कोई नाम दे पाना या चिह्नित कर पाना मुश्किल है – उसके विशिष्ट गुणों से निर्मित उसका 'स्वभाव'। सम्बन्ध और भूमिकाएँ किस प्रकार व्यावहारिक रूप लेते हैं, सीखने–सिखाने के प्रति दृष्टिकोण किस तरह स्पष्ट होते हैं, एक–दूसरे के प्रति दायित्वबोध और ध्यान रखने की भावना तथा स्कूल में प्रयुक्त सामग्री किस प्रकार व्यावहारिक इस्तेमाल में आ रहे हैं – इन सब बातों में स्कूल का यह 'स्वभाव' दृश्यमान होता है। क्या स्कूल का वातावरण और 'स्वभाव' दबाव, नियन्त्रण तथा बोरियत को प्रतिबिम्बित करता है या यह एक ऐसा स्थान है जहाँ नए विचारों की खोज के लिए खुलापन और आजादी है?

एक स्कूल के स्वभाव या चरित्र का एक हिस्सा शब्दों के प्रयोग के तरीके में झलकता है – कौन किससे उनका प्रयोग कर रहा है, और उन शब्दों का प्रयोग हो ही क्यों रहा है? क्या बच्चे उन शब्दों के साथ सम्बन्ध बना पाते हैं जिन्हें वे सुन, पढ़ और प्रयोग में ला रहे हैं?

शब्द में हो चाहे बिम्बों में, बच्चों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए समय और स्थान की आवश्यकता रहती है। तुरन्त उत्तर देने का दबाव किसी अन्य व्यक्ति के विचार या सूत्र को आत्मसात किए बिना केवल दोहराव या नकल–मात्र में परिवर्तित हो जाता है।



ब्रिटिश उपन्यासकार फ़िलिप पुलमन रचनात्मक प्रक्रिया की तुलना खुले समुद्र में रात के समय मछली पकड़ने की प्रक्रिया से करते हैं जिसके लिए समय, शान्ति, जोखिम और धैर्य की आवश्यकता होती है और उसके बावजूद नतीजों के बारे में कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं होता। वे उन निदेशात्मक तरीकों का रोना रोते हैं जिनका प्रयोग करते हुए शिक्षक बच्चों से विभिन्न तकनीकों के मुताबिक चलने की आशा रखते हैं और जिनका पूरा ध्यान केवल शैली पर ही होता है। तैयार किए गए पाठ या उत्पाद को कुछ विशेष मानक आवश्यकताओं की सूची के आधार पर परखा जाता है और फिर प्रभावशाली शिक्षण के सबूत के रूप में पेश किया जाता है।

एक बच्ची लोगों की बातचीत को सुनते हुए, उसमें हिस्सेदार होते हुए भाषा–प्रयोग सीखती है और फिर धीरे–धीरे अपनी बात को स्वर देने और उसे साझा करने तक पहुँचती है। इसी प्रकार सदृश्य भाषा को जाँचते–परखते और उसकी समझ बनाते हुए वह चीजों के साथ अन्तःसम्बन्ध को अपनी बुनियाद बनाती है। कला मूलतः चीजें बनाने से सम्बद्ध नहीं है बल्कि इसका अधिक सम्बन्ध देखने, सुनने, सूंघने और छूने के बारे में सीखने से है। इसकी शुरुआत वस्तुओं, लोगों और सामग्री के साथ ग्रहणशील सम्बन्ध में होने से होती है।

जैसा कि पुलमन कहते हैं, कई मौकों पर हमें निरन्तर, बेरोक–टोक समय और स्थान की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, हम यह मानकर नहीं चल सकते कि सब बच्चों को किसी एक चित्र, गणित का सवाल या ज्यामिती की निर्मिति को पूरा करने के लिए एक समान मात्रा में समय चाहिए होता है। कम उम्र के बच्चे कई बार निरन्तर ध्यान केन्द्रित रखने की अपनी क्षमता से हमें हैरान कर सकते हैं।

हम अमूमन बच्चों को स्वायत्तता का एहसास नहीं दे पाते। स्थान, समय और विषयवस्तु मोटेतौर पर शिक्षक के हाथ में होते हैं – वही तय करता है कि किसे क्या और कितने समय के लिए करना है। तीन साल हुए हमने इस सोच के तहत एक छोटा सा प्रयोग शुरू किया कि बच्चों को कम से कम कुछ तो चुनाव का अवसर दिया जाए। सप्ताह में एक बार, प्रत्येक शुक्रवार को वे किसी न किसी गतिविधि का "स्वतन्त्र चुनाव" कर सकते हैं। गतिविधियों में नाटक, भोजन बनाना, पेपर फोल्डिंग, चित्रकला, पैटर्न–निर्माण, कम्प्यूटर–कला, ब्लॉक बनाना और मिट्टी के साथ काम शामिल हैं। बच्चे अपनी मर्जी से अकेले, जोड़े बनाकर या फिर समूहों में काम कर सकते हैं और जिसके भी साथ काम करना चाहते हैं, उस पर आयु की कोई बन्दिश नहीं होती। शिक्षकों का हस्तक्षेप न्यूनतम होता है लेकिन कक्षा के अन्त में बच्चे एक–दूसरे को अपना किया हुआ काम दिखाते हैं।

हो सकता है कि इस प्रकार की आजादी देना हर वक्त व्यावहारिक, सम्भव या इच्छा लायक न हो और कुछ क्षेत्रों में साफ–स्पष्ट निर्देश और नए ज्ञान के लिए मध्यस्थता आवश्यक हो, लेकिन स्कूल विभिन्न बच्चों की ऊर्जा,



सीखने की उनकी पसन्दीदा शैलियों और रुचियों के साथ काम करने का प्रयास कर सकता है, न कि उनके विरुद्ध।

स्कूल के वातावरण के सन्दर्भ में हम कई स्तरों के बारे में सोच सकते हैं। एक स्वस्थ वातावरण हम उसे कहेंगे जिसमें सम्पर्क–सम्बन्ध होते हैं – इमारत के भीतर और बाहर में सम्बन्ध; स्कूल के भीतर सीखने और उसकी हदों के बाहर के जीवन में सम्बन्ध; खुद के भीतर जो कुछ चल रहा है, उसके साथ सम्बन्ध बनाने की छूट; सोचने, सपने लेने और कल्पना करने की गुंजाइश; और इस सबको साझा कर पाने के लिए स्थान और समय का होना, तथा अपने चुनाव के आधार पर जो और जैसा चाहते हैं, कर पाने की सम्भावना। टैगोर का सपना एक ऐसा स्थान रच पाने का था जो सीखने का साझा स्थान हो, जहाँ मन की आन्तरिक हलचल और आसपास का प्राकृतिक संसार आजादी के साथ एक–दूसरे को रूप–आकार दे पाएँ, इक–दूजे को समृद्ध कर पाएँ। यह एक उत्तम विचार है जो हमें प्ररित करता है कि हम वर्तमान की, यहाँ और अभी की, बदलती आवश्यकताओं को पूरा करते हुए एक अधिक सन्तुलित भविष्य के लिए तैयार हो पाएँ।

जेन साही अंशकालिक रूप में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु एवं टाटा इंस्टीटयूट ऑफ सोशल साइंसेस, मुम्बई से जुड़ी हुई हैं। वे बेंगलूरु के बाहरी हिस्से में स्थित एक अनौपचारिक विद्यालय सीता स्कूल में 1975 से कार्यरत हैं। हाल ही के दिनों में उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों में अपनी भागीदारी बढ़ाई है। उनसे jane.sahi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।



स्कूल का वातावरण: क्या इससे फर्क पड़ता है?

दो मित्रों में संवाद

शशिधर जगदीशन

दो दोस्त काफी समय बाद मिल रहे हैं। उनमें से एक शिक्षक है। वे बात करने लगते हैं और शिक्षा उनकी चर्चा का विषय बन जाता है।

दोस्तः तुम्हारा स्कूल सच में बहुत ही सुन्दर है और यहाँ पर बच्चे भी बहुत खुश और दोस्ताना प्रवृत्ति के दिखाई दे रहे हैं। मुझे मालूम है कि स्कूलों को बनाने और चलाने में बहुत ऊर्जा लगती है। मगर मुझे यह बताओ – क्या शिक्षा के लिए सचमुच कुछ विशेष हालात चाहिए होते हैं?

शिक्षकः मेरे खयाल से यहाँ विचार करने लायक दो सवाल हैं। शिक्षा का लक्ष्य क्या है और स्कूल का वातावरण बच्चों पर कैसे प्रभाव डालता है?

दोस्तः मगर एक मिनट। स्कूल का वातावरण तो कोई बहुत महत्त्वपूर्ण बात नहीं जान पड़ती। हम जानते हैं कि बच्चे सभी तरह के वातावरण में सीख सकते हैं : मसलन, युद्ध–छिड़े इलाकों में, जबरदस्त गरीबी के बीच, विद्वेषी और घरेलू हिंसा के माहौल में भी। तो फिर मददगार, क्षमतावर्द्धक स्थानों को लेकर इतना अधिक हल्ला–गुल्ला और उत्तेजना क्यों? क्या इससे सच में कोई फर्क पड़ता है?

शिक्षकः क्या तुम चाहोगे कि तुम्हारा बच्चा ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में बड़ा हो?

दोस्तः अरे नहीं! लेकिन हम भी तो परम्परागत शिक्षा प्राप्त करते हुए ही यहाँ तक पहुँचे हैं, और मेरा ख्याल है कि हम अच्छी अवस्था में ही हैं।

शिक्षकः अपनी तो तुम बताओगे, मगर मैं तो अच्छा महसूस नहीं करता !

दोस्तः क्या मतलब? अरे भई हम समाज के कामयाब सदस्य हैं, अच्छे माने जाते हैं।

शिक्षकः हाँ, हम कुछ हद तक कामयाब और उपयोगी हैं। मगर सम्पूर्ण समाज और व्यक्ति–विशेष की ओर



देखें तो मुझे लगता है कि न तो समाज स्वस्थ अवस्था में है और न ही व्यक्ति खुश हैं।

दोस्तः समाज की तो कई समस्याएँ हैं – मगर हम व्यक्तिगत स्तर पर इन्हें कैसे हल कर सकते हैं? और इसका शिक्षा से क्या सम्बन्ध है?

शिक्षकः इससे पहले कि हम समाज को ठीक करने की कोशिश करें, क्यों न पहले यह देखें कि वह क्या है जो समाज को ऐसा बनाता है? तब शायद हम शिक्षा और समाज के सम्बन्ध को समझ पाएँगे – कम से कम उस तरह, जैसा वह मेरी दृष्टि में है।

दोस्तः अरे, यह सवाल तो समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों और दार्शनिकों के लिए है न कि तुम्हारे और मेरे लिए। मगर मैं अन्दाजा लगाऊँ तो कहूँगा कि व्यवस्था बहुत भ्रष्ट है, धनवानों और राजनीतिज्ञों के बीच साँठ–गाँठ है, शासन व्यवस्था बहुत ही

घिसी–पिटी है और इसके अलावा हजारों अन्य कारक हैं जिनके बारे में हम शायद जानते भी नहीं या जिन्हें समझ पाना ही हमारे लिए सम्भव नहीं है। मुझे बताया गया है कि व्यक्ति को उसके समाज से अलग करना असम्भव है।

शिक्षकः ठीक है, मैं मानता हूँ कि यह एक बहुत ही जटिल मुद्दा है और मैं तो समाजशास्त्र या अर्थशास्त्र के बारे में बात करने की सामर्थ्य भी नहीं रखता। लेकिन क्यों न हम मानव तत्व पर ध्यान केन्द्रित करें? हम भ्रष्ट, संवेदनहीन और शोषक क्यों हैं ?

दोस्तः शायद यह इन्सान की फितरत का अभिन्न अंग ही हो?

शिक्षकः इन्सानी फितरत से तुम्हारा क्या अर्थ है?

दोस्तः मनुष्य जानवर जगत का हिस्सा है और वहाँ हम स्वयं को, अपने बच्चों को, अपने इलाके को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति पाते हैं। आदिकाल के कबीलों में भी हिंसा और दूसरों पर प्रभुत्व की प्रवृत्ति पाई जाती है। तो यह सब हमारी फितरत का भी हिस्सा है.....

शिक्षकः लेकिन इन्सान दयावान, निःस्वार्थ और करुणाशील भी होते हैं। और मैंने ये गुण जानवरों में होने की बात भी सुनी है। कुछ भी हो, क्या तुम इस बात से सहमत नहीं हो कि इन्सान में सीखने की कमाल की सामर्थ्य होती है? और हमें पूछना होगा कि क्या शिक्षा का प्रभाव व्यक्ति और समाज पर नहीं पड़ता?

दोस्तः जाहिर है, वह तो पड़ता ही है! शिक्षा से अपेक्षित है कि वह बच्चों को अपनी रोटी–रोजी कमाने में मददगार हो और इस अर्थ में वह व्यक्ति और समाज दोनों पर प्रभाव डालती है।

शिक्षकः बिल्कुल, लेकिन क्या मैं तुम्हारे साथ शिक्षा के बारे में कृष्णमूर्ति के विचार साझा कर सकता हूँ? इन दिनों मैं उनकी पुस्तकें पढ़ता रहा हूँ।[1]

"'स्कूल' शब्द का अर्थ है फुरसत, सीखने की फुरसत; और एक ऐसा स्थान जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी फल–फूल सकें, जहाँ भविष्य की पीढ़ी को तैयार किया जाए – यही स्कूलों का उद्देश्य है, न कि इन्सानों को यांत्रिक, प्रौद्योगिक औजारों के रूप में नौकरियों और व्यवसायों आदि के लिए तैयार करना। यह आवश्यक है, मगर इतना ही आवश्यक है कि वे बिना भय, बिना किसी चकराहट और अनिश्चय के, ईमानदार मनुष्यों के रूप में फलें–फूलें और एक ऐसा अच्छा इन्सान होना सम्भव हो पाए – मैं शब्द 'अच्छा' को उसके सही अर्थ में प्रयोग कर रहा हूँ न कि सामान्य अर्थ में; 'अच्छा', एक सम्पूर्ण मानव के अर्थ में, जो खण्डित और टुकड़ा–टुकड़ा नहीं और न ही अनिश्चय और भ्रम में है।"

"निश्चित ही, स्कूल एक ऐसा स्थान है जहाँ हम जीवन की समग्रता, उसकी सम्पूर्णता के बारे में सीखते हैं..... एक ऐसा स्थान जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों न केवल बाह्य संसार और ज्ञान के संसार को बल्कि अपनी सोच को, अपने व्यवहार को भी जाँचते–परखते हैं। यहीं से वे अपने ढालने, अपने दशानुकूलन को खोज पाना–जानना शुरू करते हैं और यह भी कि किस तरह वह उनकी सोच को विकृत करता है और यही अनुकलन वह स्वत्व है जिसे इतना अधिक और निर्मम महत्त्व दिया जाता है। इस बात के बारे में जागरूकता के साथ ही दशानुकूलन और दुख से आजादी की शुरुआत होती है। और ऐसी आजादी में ही सच्चा सीखना हो सकता है।"

दोस्तः यह तो कुछ डर सा पैदा करने वाली और चुनौती भरी बात लगती है। क्या शिक्षा सच में ऐसी बड़ी चुनौती का मुकाबला कर सकती है? आप कृष्णमूर्ति के साथ शिक्षा के उद्देश्य पर सहमत हों तो कैसा वातावरण बना रहे होंगे?

शिक्षकः यह डराने वाली बात लग सकती है लेकिन जब मैं संसार के हालात देखता हूँ, तो मुझे शिक्षा देने का कोई अन्य तरीका दिखाई नहीं देता! चलो, मैं तुम्हें बताता हूँ कि मेरे और मेरे साथियों की निगाह में ऐसी शिक्षा के लिए क्या होना जरूरी है। सर्वप्रथम, शिक्षक और विद्यार्थी का रिश्ता

[1] Beginnings of Learning and
The Whole Movement Of Life Is Learning,
by J. Krishnamurti

परस्पर विश्वास और स्नेह पर आधारित होना चाहिए, भय और सत्ता पर नहीं। यदि विद्यार्थी और शिक्षक को मिलकर मानव की आन्तरिक चेतना की प्रकृति की पड़ताल करना है तो एक–दूसरे से भय और अविश्वास के माहौल में यह नहीं हो सकता।

दोस्तः तुम ठीक कह रहे हो। मुझे याद है कि हम अपने शिक्षकों से कितना डरते थे। हम कभी भी उनसे सम्बद्ध महसूस नहीं करते थे सिवाय उन कुछ शिक्षकों के साथ जो दोस्त और हमदर्द लगते थे। लेकिन एक सवाल है। बेहतरीन रिश्ते में भी, बड़ा होने के नाते, और बच्चे के प्रति जिम्मेवार होने के नाते कभी–कभार उन्हें डाँटना नहीं पड़ता? क्या तुम्हें कुछ नियम निर्धारित नहीं करने पड़ते और उनके द्वारा एक–दूसरे को हानि पहुँचाने पर ऊँची आवाज में नहीं बोलना पड़ता? यह न कहना कि वे तुमसे डरते नहीं हैं!

शिक्षकः यह तुमने बहुत अच्छा मुद्दा उठाया। हम यह दावा नहीं कर रहे कि हमने हर प्रकार का भय समाप्त कर दिया है। लेकिन भय को रीतिपूर्वक, तरीके से इस्तेमाल किया जाता है तो बात दूसरी ही तरह की हो जाती है : तब भी, जब शिक्षक और विद्यार्थी के बीच का आदान–प्रदान मुख्य तौर से भय के आधार पर ही हो। कुछ साल पहले कुछ शिक्षकों[2] ने भारत में कई स्कूलों में सर्वेक्षण किया था कि बच्चों को किन बातों से भय लगता है। मुझे उनकी कुछ प्रतिक्रियाएँ, उनके कुछ डर याद हैं : 'गृह कार्य, परीक्षाएँ और खतरनाक जानवर', 'अन्धेरा, गणित के शिक्षक और स्विमिंग पूल के गहरे हिस्से', 'प्राकृतिक आपदाएँ, पिता जी, शिक्षक और परीक्षाएँ' तथा 'ईश्वर, साँप, कुछ शिक्षक'।



दोस्तः मैं तुम्हारी यह बात समझ गया हूँ कि परम्परागत शिक्षा में मुख्य तौर पर भय से ही बच्चों को कुछ सीखने के लिए प्रेरित किया जाता है। सोचें तो स्कूलों में आमतौर पर प्रतिस्पर्धा, तुलना, ईनाम और सजा का बहुत प्रयोग किया जाता है – क्या आपके ख्याल से ये सब सीखने के लिए हानिकारक हैं?

शिक्षकः हाँ! इनसे सीखना गम्भीर तौर पर बाधित होता है, बल्कि इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस सबकी वजह से एक क्रूर समाज बनता है। मजेदार बात है कि वैज्ञानिक शोध ने भी बेशक यह दर्शाया है कि भय और डर अकादमिक शिक्षा को प्रभावित करता है। प्रतिस्पर्द्धा, ईनाम और दण्ड कुछ समय के लिए तो लाभ दे सकते हैं लेकिन लम्बे दौर में संवेदनारहित तथा असुरक्षित इन्सान ही पैदा करते हैं।

दोस्तः मैं अब उस सम्बन्ध को कुछ–कुछ देख पा रहा हूँ जो आप शिक्षा और समाज के बीच स्थापित कर रहे हैं लेकिन अब तक हम इसकी ओर केवल परम्परागत शिक्षा के नकारात्मक प्रभावों की दृष्टि से जा पा रहे हैं। आप मुझे अपने दृष्टिकोण के कुछ ठोस नतीजों के बारे में बताइए।

शिक्षकः पहले तो मैं यह बता दूँ कि मेरे विचार से जितना अधिक आप शिक्षा के क्षेत्र में काम करते हैं, उतना ही कम शायद आप सैद्धान्तिकता की कोई बात कर सकते हैं या नतीजों की गारण्टी दे सकते हैं ! हाँ, बच्चों के साथ पिछले 23 सालों में किए गए काम के आधार पर कुछ बातें हम पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं।

[2] See Journal of the Krishnamurti Schools, Vol 15, 2011

दोस्तः उदाहरण के लिए?

शिक्षकः परीक्षा लिए बिना तथा अन्य तिकड़मों का सहारा लिए बिना पढ़ाना सम्भव है। बल्कि पहले ही दिन से विद्यार्थियों को सोचने और सवाल करने के लिए प्रेरित किया जाता है, और सुनिश्चित करने की कोशिश रहती है कि वे अवधारणाओं को समझें; इसीलिए, हमें लगता है कि उनकी पकड़ गहरी है और नई सामग्री को सीखने–समझने की उनकी सामर्थ्य बढ़ती है। और यह बात सीखने के आम–साधारण अर्थ से आगे तक जाती है। जैसे ही हम समझने को विद्यार्थियों के साथ अपने सम्बन्ध के केन्द्र में ले आते हैं, कई सूक्ष्म लेकिन महत्त्वपूर्ण बातें होने लगती हैं और यह हमारे दिन–प्रतिदिन की क्रिया–प्रतिक्रिया में भी होने लगता है। जो कुछ भी होता है, उसे हम समझने के दृष्टिकोण से सम्बोधित करने लगते हैं – बच्चे द्वारा किसी नियम को तोड़े जाने पर भी......

दोस्तः क्या आपको अब भी प्रतिदिन प्रोत्साहन और प्रतिरोध की चुनौती का सामना नहीं करना पड़ता? इसके अलावा, आपका माहौल चाहे इस बात को प्रेरित न करे, बच्चे तो हमेशा एक–दूसरे के साथ तुलना करेंगे ही। इन अत्यन्त अनुकूलित शक्तियों से आप कैसे सम्बोधित होते हैं?

शिक्षकः तुमने हथौड़ा सही जगह पर मारा है! जैसा मैंने कहा, शिक्षा के सीमित लक्ष्यों तक पहुँचना, यानी दक्षताओं और अवधारणाओं पर महारत हासिल कर पाना, सम्भव है। और यह स्कूलों में आमतौर पर शिक्षकों और विद्यार्थियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार के बिना भी सम्भव है। लेकिन जैसे ही आप दृश्यपटल को फैलाते हैं, आपके सामने मानव–अनुकूलन की विशाल चुनौती आ खड़ी होती है। मेरा अर्थ है कि एक–दूसरे के साथ सम्बन्ध बनाने में हमारा सामना अपने पूर्वाग्रहों, डरों और चिन्ताओं, आशाओं और इच्छाओं, खुशियों और दुखों से होगा, हमें तुलना की तथा अपने सोचने और करने के विशेष तरीकों के बारे में सोचने की आवश्यकता महसूस होगी।

दोस्तः तो आप इस चुनौती का सामना कैसे करते हैं?

शिक्षकः आशा है कि नम्रता से कर पाते हैं ! हम ऐसा वातावरण बनाने की आशा करते हैं जहाँ हम स्वयं के अनुकूलन और ढलने की प्रक्रिया, पहचान और विभाजन, विश्वास और असुरक्षा की ताकतों के प्रति जागरूक हो पाएँ और इस बारे में भी कि किस प्रकार ये ताकतें वृहद समाज में सक्रिय होती हैं। मैं फिर कहूँगा, कि स्वयं की समझ से ही कोई बदलाव आ सकता है।

दोस्तः और अगर विद्यार्थी ही खुद के बारे में कुछ सीखने को तैयार न हों?

शिक्षकः यह तो तय है कि उन पर कुछ थोपा नहीं जा सकता। हम उन्हें खुद के बारे में सीखने को बस आमन्त्रित ही कर सकते हैं। इसके लिए स्कूल की व्यवस्था को ऐसा बनाया जाता है कि सोच–विचार और प्रश्न करने की प्रक्रिया चल सके। हम सीखने वालों का एक ऐसा समुदाय हैं जिसमें सहयोग और साथ–साथ काम करने पर बहुत बल दिया जाता है। यह स्वाभाविक तौर पर हमें स्वयं को 'सम्बन्ध के आईने' में देखने पर मजबूर करता है। हम यह भी सीखते हैं कि किस प्रकार संसार भर में लोग अलग–अलग हालात में जीवन का सामना करते हैं। हम बहुत–सा समय प्रकृति के समीप भी बिताते हैं और हमने दिन में शान्ति से सोच–विचार के लिए भी जगह निकाली है। यह आधे घण्टे का 'शान्त समय' प्रतिदिन तलाशना विद्यार्थियों के लिए सबसे कठिन बातों में से एक है। और यह तथ्य अपने आपमें बहुत कुछ बताता है। लगता है कि जैसे ही हम किसी कार्य विशेष या मन बहलावे में उलझे हुए नहीं होते, हम स्वयं में एक बेचैनी के प्रति सचेत हो जाते हैं।

दोस्तः लेकिन सम्भव है कि विद्यार्थी इन अनुभवों को बहुत ही अलग तरीके से जान–समझ रहे हों। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि वे आपके 'शान्त समय' की व्याख्या योजना बनाने या दिन में सपने बुनने के लिए निश्चित समय के रूप में कर रहे हों। आप यह कैसे सुनिश्चित करते हैं कि वे सच में उन प्रश्नों की ही जाँच–पड़ताल करें जो आपके स्कूल को जीवन्त बनाते हों?

शिक्षकः तुममें सचमुच मुश्किल प्रश्न करने का हुनर है ! हाँ, हममें से प्रत्येक व्यक्ति बातों को अपने–अपने तरीके से व्याख्यायित करेगा। हम अपना ध्यान और ऊर्जा अपने विद्यार्थियों के साथ बात करने पर लगाते हैं। उदाहरण के लिए, सीनियर विद्यार्थी एक सप्ताह में औसतन 3 घण्टे तथाकथित संवाद–सत्रों में गुजारते हैं। वे वयस्कों के साथ अनौपचारिक बातचीत भी कर सकते हैं। विषय स्कूल के नियमों से लेकर अपने आपसी रिश्तों को समझने और संसार में उनके स्थान तक के हो सकते हैं। इस सबमें हम यह देखने की आशा करते हैं कि क्या हम मिलकर विचार और भावना की उन क्रियाओं की ओर सच में ध्यान दे सकते हैं जो पल–प्रतिपल चल रही होती हैं? यह सच में बहुत मेहनत माँगता है और मेरा विश्वास करें, हम अभी इस यात्रा की शुरुआत में ही हैं।

दोस्तः तो आप शायद कहना चाहते हैं कि आप ऐसे इन्सानों का पोषण करने की आशा करते हैं जो दयालु हों और उन सब बाधाओं से आजाद, जिन्हें हम बिना सवाल किए विरासत में ले लेते हैं (हालाँकि इस की कोई गारण्टी नहीं है!)......





शशिधर जगदीशन ने गणित विषय में Syracuse University से 1994 में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। वे पिछले 27 वर्षों से शिक्षक हैं। उन्हें बेंगलूरु के सेण्टर फॉर लर्निंग में सीनियर स्कूल के लिए कार्यक्रम विकसित करते हुए युवाओं के साथ संवाद करना और काम करना अच्छा लगता है। उनसे jshashidhar@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** रमणीक मोहन

तैयारी भावी नागरिकों की: जुड़ाव स्कूल के साथ समुदाय का

नज़रुल हक़ एवं सुजीत सिन्हा

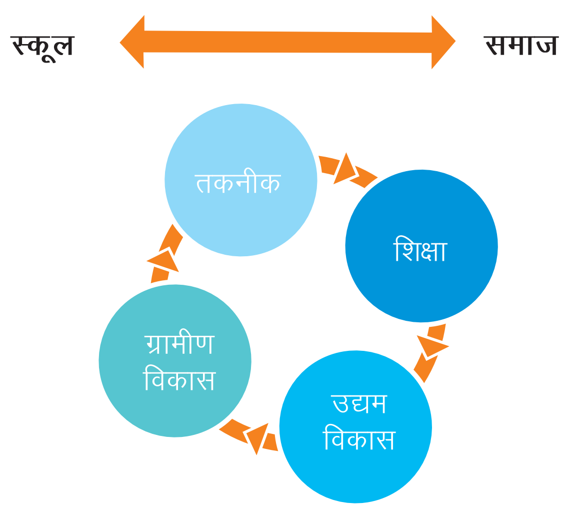
राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में कहा गया है कि "उर्वर एवं सुदृढ़ शिक्षा का सृजन सदैव बच्चे की भौतिक व सांस्कृतिक मिट्टी में होता है, उसी में उसकी जड़ें जमी होती हैं तथा उसका पोषण माता–पिता, शिक्षकों, सहपाठियों व समुदाय के साथ अन्तःक्रिया के माध्यम से होता है।" स्कूलों में समुदाय की भागीदारी के विभिन्न रूप हो सकते हैं। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा, 2009 एक ऐसा कानून है जो 6–14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने की माँग करता है। इस अधिनियम में ही स्कूलों के लोकतन्त्रीकरण के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं और साथ ही इस बात के प्रावधान भी हैं कि स्कूल प्रबन्धन समितियों (SMC) के रूप में माता–पिता एवं स्थानीय समुदाय स्कूल को आकार देने व उसके संचालन में अपनी भूमिका निभाएँ और स्कूल विकास योजना तैयार करें। यह एक अच्छा कदम है और ऐसे जुड़ाव को तकनीकी हस्तक्षेपों के रूप में देखा जा सकता है जिसका उद्देश्य यह देखना है कि स्कूल प्रभावी ढंग से चलते रहें। हमारे बच्चे आज के (और आने वाले कल के) भी नागरिक हैं। समुदाय और स्कूल के बीच का सम्बन्ध जैविक और बच्चे व समुदाय के भविष्य से जुड़ा हुआ होना चाहिए। हमारे देश में ऐसे कुछ उदाहरण हैं जहाँ स्कूल–समुदाय का जुड़ाव सफल रहा है और जिनसे शिक्षा के अर्थ में भी योगदान मिला है। हम उनमें से तीन के बारे में चर्चा करेंगे: महाराष्ट्र का विज्ञान आश्रम का IBT मॉडल, आश्रम स्कूलों में शिक्षण–मित्र कार्यक्रम एवं पश्चिम बंगाल में स्वनिर्वर प्रयोग।

विज्ञान आश्रम मॉडल

वर्ष 1983 में महाराष्ट्र के पवल में डॉ. एस. कालबाग ने विज्ञान आश्रम की स्थापना की। डॉ. कालबाग ने देखा कि हमारे ज्ञान वितरण या शिक्षा प्रणाली में समाज के सभी वर्गों को समान रूप से ज्ञान नहीं मिलता। इसके कारण निर्धन लोग बौद्धिक कौशलों के सम्बन्ध में गम्भीर रूप से अक्षम रह जाते हैं। अतः वे आसपास उपलब्ध ज्ञान का उपयोग नहीं कर पाते। वे "ग्रामीण जनता की वास्तविक आवश्यकताओं" के लिए वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान के प्रसार को लेकर अधिक चिन्तित थे और उन्होंने महसूस किया कि तकनीक के वितरण के लिए केवल शिक्षा प्रणाली ही प्रभावी तरीका है। इसलिए विज्ञान आश्रम की शुरुआत हुई जो अपने उद्देश्य "शिक्षा प्रणाली के माध्यम से ग्रामीण विकास" की दिशा में काम कर रहा है।

आन्तरिक अनौपचारिक कार्यक्रम के अलावा, डॉ. कालबाग ने स्कूल के विद्यार्थियों के लिए एक कोर्स Introduction to Basic Technology (IBT) डिजाइन किया है। यह कक्षा आठ से दस के विद्यार्थियों के लिए एक औपचारिक कोर्स है जो प्रवर्धनशील है। वर्तमान में यह चार राज्यों (महाराष्ट्र, कर्नाटक, छत्तीसगढ़ तथा गोवा) के 122 पब्लिक स्कूलों में चल रहा है। महाराष्ट्र सरकार ने कक्षा दसवीं की बोर्ड की परीक्षाओं के लिए IBT को एक विषय के रूप में मान्यता दी है। IBT काफी अभिनव पाठ्यक्रम है। इसमें चार उप विषय हैं: कृषि/पशु पालन; गृह/स्वास्थ्य; इंजीनियरिंग/मेटीरियल तथा ऊर्जा/पर्यावरण। लेकिन इस चर्चा में IBT के डिजाइन के सिद्धान्तों पर अधिक ध्यान दिया जाएगा तथा यह भी देखा जाएगा कि जैविक स्कूल–समुदाय जुड़ाव को प्राप्त करने के लिए इसकी रचना कैसे की गई।

बुनियादी मॉडल दो धारणाओं पर आधारित है–



पूरे विज्ञान आश्रम शिक्षा मॉडल के चार सिद्धान्त हैं:

काम करते हुए सीखना

कक्षा में विद्यार्थी तब तक कुछ नहीं सीख सकते जब तक कि वे वास्तविक जीवन में अनुभवों की सहायता से पूर्वापेक्षित "अवधारणाओं" को सीख न लें। हर प्रकार की शिक्षा के लिए, खास करके विज्ञान की शिक्षा के लिए इस बात का बहुत महत्त्व है।

बहु कौशल प्रशिक्षण

कौशल हमारे विचारों और आविष्कारों को ठोस रूप देने का साधन हैं। कौशल–प्रशिक्षण विद्यार्थियों को दक्ष कारीगर बनाने के लिए नहीं है (वास्तव में विज्ञान आश्रम अपने को एक व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम के संचालक के रूप में नहीं देखता) लेकिन मन को ऊर्जा प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रकार के कौशल आवश्यक हैं। इससे "तकनीकी साक्षरता" का सुगमीकरण होता है।

स्कूल और समुदाय के बीच दो तरफा जुड़ाव

स्कूल को समुदाय के लिए विभिन्न प्रकार की सेवाएँ मुहैया करानी चाहिए (सशुल्क सेवा) और ऐसा करते समय विद्यार्थी अपने ज्ञान से जुड़े व्यावहारिक एवं आर्थिक कौशल सीख सकते हैं (वास्तविक जीवन की स्थिति में)। समुदाय स्कूल के कामकाज में हिस्सेदार बन जाता है और इस प्रकार उसे आर्थिक रूप से स्थिर बना देता है।

एक उद्यमी के रूप में शिक्षक

विज्ञान आश्रम स्कूल में एक प्रशिक्षित "ड्रॉप आउट" को शिक्षक के रूप में नियुक्त करता है। वह स्कूल में उपलब्ध सुविधाओं के साथ अपना व्यवसाय चलाता है और विद्यार्थियों को प्रायोगिक प्रशिक्षण देता है। ऐसा करने से उसको अतिरिक्त आय हो जाती है, समुदाय को मामूली कीमत पर सेवा मिल जाती है और विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा मिल जाती है।

जब हम स्कूलों में समुदाय की भागीदारी के बारे में सोचते हैं तो अन्तिम दो कारक बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यह तो मानी हुई बात है कि स्कूल एवं विद्यार्थी पृथक होकर काम नहीं कर रहे हैं बल्कि वे उस समुदाय का हिस्सा हैं जहाँ वे रहते हैं। इसके दो निहितार्थ हैं: **(अ)** बच्चे के भविष्य के निहितार्थ जब वह स्कूलिंग समाप्त करके अपने परिवार और समुदाय के पास वापस लौटेगा **(ब)** समुदाय के निहितार्थ क्योंकि महाराष्ट्र के अधिकतर स्कूल, जहाँ IBT कोर्स चल रहे हैं, काफी दूरदराज के क्षेत्रों में हैं तथा स्कूल वास्तव में बहुत सारी सेवाएँ गाँव वालों को प्रदान कर रहे हैं। इस प्रक्रिया में स्कूल कुछ पैसे कमाते हैं जो IBT कोर्स को चलाने में खर्च होते हैं। विद्यार्थी वास्तविक जीवन की समस्या को सुलझाने के तरीके सीखते हैं और आसपास के क्षेत्रों के निवासी भी लाभान्वित होते हैं। जैसा कि हमने पहले भी बताया है, IBT विशुद्ध रूप से विज्ञान और तकनीक पर आधारित कोर्स है और इस पहल के पीछे सामान्य विचार यह है कि ग्रामीण लोगों को ऐसी क्षमताओं से लैस किया जाए जिससे वे नए तकनीकी विकासों से होने वाले लाभों को काम में ला सकें। यह देखा गया है कि इन स्कूलों के माध्यम से अनेक नई तकनीकों को गाँव में लाया गया है (जो अन्यथा शायद सम्भव न होता)। इनमें से कुछ तकनीकों और सेवाओं का गाँव वालों की आजीविका और सेवाओं के साथ सीधा सम्बन्ध है–ये इस प्रकार हैं:

कृषि–पशुपालन

ड्रिप सिंचाई, छिड़काव यन्त्र, बीज बोना, अज़ोला कल्चर, कीट नियन्त्रण, मृदा परीक्षण आदि।

ऊर्जा / पर्यावरण

सौर कुकर, एल.ई.डी. प्रकाश व्यवस्था, बायो गैस, सोक पिट, वाटर शेड आदि।

खाद्य प्रसंस्करण

सौर शुष्कीकरण, जल परीक्षण आदि।

इंजीनियरिंग

फेरो सीमेंट, बाँस उपचार, कम लागत के आवास, शौचालय, पेडल पॉवर आदि।

शिक्षक को समुदाय का ही एक उद्यमी होना चाहिए! IBT के चार उप विषय हैं और कक्षा आठ से दस के बच्चों को पढ़ाने के लिए हर उप विषय के मॉड्यूल के लिए एक विशेषज्ञ शिक्षक चाहिए। उदाहरण के लिए: स्कूल को एक विशेषज्ञ किसान, विशेषज्ञ वेल्डर, विशेषज्ञ प्रयोगशाला व्यक्ति और बिजली व ऊर्जा में पर्याप्त कौशल रखने वाले व्यक्ति की जरूरत पड़ेगी। समुदाय में पहले से ही मौजूद चार उद्यमियों को काम पर लेने से दो निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति होती है: समुदाय को लगता है कि वे भी स्कूल का हिस्सा हैं और दूसरे ये लोग विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय व्यक्ति बन जाते हैं क्योंकि विद्यार्थियों को लगता है कि उन्हें भी गाँव में ही रहकर अपने लिए सार्थक आजीविका खोजनी है या उसका सृजन करना है।

शिक्षण मित्र कार्यक्रम (SMP)

महाराष्ट्र के कुछ आश्रम स्कूलों में भारत एग्रो इंडस्ट्रीज फाउण्डेशन (BAIF) द्वारा SMP को शुरू किया गया। आश्रम स्कूल आदिवासी विद्यार्थियों के लिए आवासीय स्कूल हैं जिनकी अवधारणा नियमित सामान्य स्कूलों से अलग प्रकार की है। आश्रम स्कूलों की अवधारणा को बुनियादी शिक्षा के गाँधीवादी दर्शन से लिया गया है जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी साथ–साथ रहते हैं तथा अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास और क्षमता को प्रखर करने में विद्यार्थियों की मदद की जाती है। विभिन्न नीतिगत दिशा निर्देशों ने जोर दिया है कि:

ये स्कूल सबसे पिछड़े आदिवासी क्षेत्रों में स्थापित किए जाएँगे;

ये अन्तर–ग्राम स्कूल होंगे;

इन्हें ऐसे क्षेत्रों में खोला जाएगा जहाँ सामान्य स्कूल नहीं खोले जा सकते।

महाराष्ट्र में ही, 1103 आश्रम स्कूलों में चार लाख आदिवासी विद्यार्थी नामांकित हुए हैं (556 – निजी सहायता प्राप्त एवं –576 सरकारी)

नन्दुरबार क्षेत्र के ग्रामीण और आदिवासी इलाके में काम करने के वर्षों बाद BAIF ने देखा कि अधिकांश आदिवासी विद्यार्थी स्कूल शिक्षा पूरी करने या बीच में ही छोड़ने के बाद अपनी परम्परागत कृषि–आधारित जीवन शैली को ही अपनाते हैं। अब चिन्ता यह थी कि क्या स्कूली जीवन के ये लम्बे वर्ष उन्हें ऐसे आवश्यक कौशलों से लैस करते हैं जिसकी उन्हें भावी जीवन में आवश्यकता है या फिर वे उन्हें जीवन की वास्तविक प्रक्रियाओं से दूर कर देते हैं! शिक्षण मित्र कार्यक्रम को इस तरह से तैयार किया गया था कि वह आश्रम शाला के विद्यार्थियों के समुदाय को प्रासंगिक मूल्य, व्यावहारिक ज्ञान तथा जीवन कौशल प्रदान कर सके। यह बात दृढ़ता के साथ महसूस की गई कि समुदाय के साथ पारस्परिक जुड़ाव शिक्षा प्रणाली का अभिन्न हिस्सा होना चाहिए। स्कूल ज्ञान के केन्द्र हैं और उन्हें चाहिए कि वे समुदाय को विद्यार्थियों की सहायता लेकर तो शिक्षित करें ही, साथ ही समुदाय के साथ सीधे अन्तःक्रिया करके भी शिक्षित करें। बदले में समुदाय को शारीरिक श्रम, सामग्री और वास्तविक जीवन की स्थितियों में अपने ज्ञान और कौशल को साझा करने के माध्यम से स्कूल के विकास में योगदान देना चाहिए।

दिलचस्प बात यह है कि BAIF का हस्तक्षेप इस विचार के साथ शुरू हुआ कि स्कूल अपने समुदाय के लिए "विकास केन्द्र" की तरह काम करेंगे। BAIF पहले से ही आदिवासियों के लिए विभिन्न आजीविका निर्माण/वृद्धि सम्बन्धी गतिविधियों पर काम कर रहा था। ये परियोजनाएँ अधिकतर समाकलित खेती, धान बढ़त प्रणाली, दुग्ध सहकारी, जैविक और परम्परागत खेती, फल–बागवानी, पुष्प कृषि, काजू की खेती आदि पर काम करती हैं। 2003 में उन्होंने यह फैसला किया कि आश्रम स्कूलों का उपयोग प्रदर्शन केन्द्र के रूप में किया जाए क्योंकि एक स्कूल में विभिन्न गाँवों के औसतन 400 बच्चे रहते हैं और वे छुट्टियों में अपने परिवार के पास वापस लौट जाते हैं। BAIF ने सोचा कि ये बच्चे छोटे पैमाने की ग्रामीण तकनीकों के बारे में अपने–अपने स्थानों में ज्यादा जागरूकता फैला सकते हैं। नन्दुरबार से आठ स्कूल चुने गए; BAIF के लोगों के साथ–साथ समुदाय के विशेषज्ञ किसान वहाँ प्रदर्शक के रूप में आए। 2009 में इस हस्तक्षेप को और अधिक औपचारिक रूप में नन्दुरबार जिले के 48 आश्रम स्कूलों में शुरू किया गया।

SMP का विशिष्ट लक्ष्य था आदिवासी विद्यार्थियों को जीवन कौशलों और जानकारियों से लैस करना। इन कौशलों और जानकारियों के कई आयाम हैं:

- कृषि और कृषि तकनीक सम्बन्धी कौशल व जानकारियाँ, स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करना और विद्यार्थियों को स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यक आदतों को आत्मसात करने में मदद करना;

- विद्यार्थियों की सामाजिक जागरूकता बढ़ाने के लिए उन्हें महत्त्वपूर्ण स्थानीय नागरिक संस्थानों के साथ–साथ आवश्यक सरकारी दस्तावेजों तथा नीतियों से परिचित कराना;
- उनके परिवेश की जैव विविधता के बारे में जागरूकता पैदा करना;
- महत्त्वपूर्ण जीवन कौशलों जैसे सम्प्रेषण कौशल, निर्णय लेने, समस्या सुलझाने, टीम कार्य, प्रबन्धन योजना के कौशलों के विकास आदि के लिए अवसर पैदा करना;
- आदिवासी विद्यार्थियों के आत्मविश्वास बढ़ाने और सकारात्मक छवि निर्माण के लिए अनुकूल माहौल बनाना।

आश्रम स्कूलों व समुदाय के बीच पूरकता की कोशिश इस प्रकार की गई:

- आदिवासी विद्यार्थियों के माध्यम से आसपास की आदिवासी बस्तियों में कृषि, स्वास्थ्य एवं सामाजिक विषयों में नवीनतम और उन्नत सूचना प्रसारण द्वारा;
- कुशल और जानकार गाँव वालों को संसाधक के रूप में स्कूल में आमन्त्रित करके उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करना। इसके अलावा माता–पिता एवं गाँव वालों को सामग्री (उदाहरण के लिए बाड़े के लिए लकड़ी) या श्रम का दान करके स्कूल की गतिविधियों में योगदान करने के लिए कहा गया;
- एक–दूसरे के कार्यक्रम में भाग लेना–गाँव समुदाय स्कूल के व स्कूल समुदाय के कार्यक्रमों में हिस्सा ले।

शिक्षण मित्र कार्यक्रम के स्कूल–समुदाय जुड़ाव के विचार का एक महत्त्वपूर्ण कारक था "छुट्टी की परियोजनाएँ या प्रॉजेक्ट"। इसे विद्यार्थियों द्वारा समुदाय के लिए ज्ञान की उत्पत्ति एवं प्रसार के लिए एक उपकरण के रूप में बनाया गया था। दीवाली और गर्मियों की छुट्टियों में विद्यार्थी घर में ये प्रॉजेक्ट करते थे। इन प्रॉजेक्टों के चार मुख्य प्रकार थे:

- संग्रह सम्बन्धी प्रॉजेक्ट**:** बीज अथवा पारम्परिक गीतों का संग्रह;
- प्रदर्शन सम्बन्धी प्रॉजेक्ट**:** स्वास्थ्य (उदाहरण के लिए ORS घोल बनाना या जल शुद्धीकरण) अथवा कृषि (उदाहरण के लिए कृमि खाद) से सम्बन्धित प्रदर्शन;
- सर्वेक्षण सम्बन्धी प्रॉजेक्ट: विद्यार्थियों को ग्राम स्तर पर सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मुद्दों का अध्ययन करना था, उसका गम्भीर विश्लेषण करना था, परिणाम निकालना था और समुदाय के साथ साझा करना था। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–गाँव के जल संसाधनों का सर्वेक्षण, गाँव के स्कूल छोड़कर जाने वाले विद्यार्थियों का सर्वेक्षण, जन्म व जाति प्रमाणपत्रों एवं राशन कार्डों आदि की उपलब्धता।
- फील्ड यात्रा: ज्यादातर ये यात्राएँ BAIF के सामुदायिक विकास की गतिविधियों का खुलासा करने के लिए थीं जैसे कि कृषि, प्रसंस्करण इकाइयों, जल एवं मृदा संरक्षण के स्थान, सहकारी समितियों में होने वाले नए–नए प्रयोग आदि।

SMP के उपायों को जून 2009 से मार्च 2009 तक यानी चार साल की अवधि में बहुत सक्रियता से लागू किया गया। "महाराष्ट्र, पुणे में कृषि नवीकरण के लिए क्रिया" ने परियोजना के प्रभाव का आकलन किया और अप्रैल, 2013 में इसकी रिपोर्ट दी। रिपोर्ट के अनुसार इस परियोजना के सभी हितधारकों यानी विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा समुदायों को इसकी वजह से बेहतर कृषि, जीवन कौशल, खेतों में उसके अनुप्रयोग, जैविक खाद का प्रयोग करके फसल उगाने आदि के बारे में जानकारी प्राप्त हो रही है और इस प्रकार उन्हें सीधे ही लाभ पहुँच रहा है। इस कारण से विद्यार्थियों की रुचि कृषि में पुनः जाग्रत हो रही है और उन्हें इस बात का विश्वास हुआ है कि कृषि भी आजीविका के स्थायी स्रोतों में से एक हो सकती है। फूलों की खेती, किचन गार्डन, कृमि खाद, फल–बागवानी, वृक्षारोपण तथा नर्सरी तकनीक आदि के बारे में जो कौशल विद्यार्थी प्राप्त करते हैं, उसे वे अपने माता–पिता व पूरे परिवार तक पहुँचाते हैं। ये महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं क्योंकि कोई भी समुदाय इस बात से लाभान्वित और समृद्ध होगा कि जब उसके अधिक से अधिक शिक्षित युवा गाँव में ही रहकर आजीविका बढ़ाने के बेहतर और उत्पादक उपाय शुरू करें।

प्रभाव का आकलन एक और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की बात कर सकता है: स्कूल में लड़कियों की भागीदारी। रिपोर्ट ने पता लगाया कि समुदाय की लड़कियों ने लड़कों के साथ घुलना–मिलना शुरू कर दिया है और जीवन कौशल सम्बन्धी सभी गतिविधियों में बराबरी के तौर पर भाग लेना शुरू कर दिया है। वे नौकरी करना चाहती हैं और छोटी उम्र में शादी करना नहीं चाहतीं। वे अपने स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सम्बन्धी मुद्दों पर अजनबियों के साथ बात करने में आत्मविश्वासी हैं। यह तर्क दिया जा सकता है कि ये स्कूल अपने समुदायों के संवर्धन में बड़े प्रभावी ढंग से

योगदान दे रहे हैं क्योंकि यह बात सर्वविदित है कि शिक्षित और सशक्त लड़कियाँ पूरे समुदाय को बदल सकती हैं भले ही ये योगदान प्रत्यक्ष और दृष्टिगोचर न हों।

स्वनिर्वर प्रयोग

1990 के दशक में पश्चिम बंगाल के 24 परगना जिले में काम कर रहे गैर सरकारी संगठन स्वनिर्वर ने एक सवाल पूछा था–क्या गरीब अनपढ़ समुदाय "ज्ञान उत्पादन और प्रसारण" में भाग ले सकता है? या स्कूली शिक्षा का मतलब सिर्फ यही है कि शिक्षक "ज्ञान" को पाठ्यपुस्तकों से निकालकर बच्चों के गले के नीचे उतार दें? और समुदाय द्वारा स्कूल की गतिविधियों में "भाग" लेने की सीमा बस इतनी ही है कि शायद वे कभी–कभी श्रम, सामग्री और अगर सम्भव हो तो धन के रूप में कुछ योगदान कर देते हैं एवं शिक्षकों से स्वास्थ्य और स्वच्छता पर नैतिक व्याख्यान सुन लेते हैं।

उन दिनों कक्षा तीन से इतिहास, भूगोल और विज्ञान के लिए अलग–अलग पुस्तकें हुआ करती थीं। यह बात पर्यावरण अध्ययन या EVS से पहले के जमाने की है। कक्षा तीन से पाँच के 17 अध्याय मानव इतिहास को पूरी तरह से "समझा" देते थे। भूगोल तो बस पश्चिम बंगाल के हर जिले तथा भारत के हर राज्य की जानकारियों का एक ढेर था जिसके साथ–साथ नक्शे भी याद करने पड़ते थे। बेचारे गरीब अनपढ़ माता–पिता आतंकित होने के सिवा और कर भी क्या सकते थे?

स्वनिर्वर ने इस प्रभाव को पलटकर समुदाय को वास्तविक भागीदार बनाने का निश्चय किया। कक्षा तीन और चार के बच्चों से पहले अपने स्वयं का व्यक्तिगत इतिहास या समय रेखा बनाने को कहा गया। कुछ तो उन्हें याद था। लेकिन बाकी का उन्हें पता लगाना था। लेकिन किससे? उनके बचपन के शुरुआती दिनों के बारे में किसे पता होगा? क्या पाठ्यपुस्तकों में उनका इतिहास होगा? क्या शिक्षकों को पता होगा? ये अनपढ़ माता–पिता ही तो थे जो अपने बच्चों को उनके प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं के बारे में बता सकते थे। अगली बात थी अपनी पिछली तीन–चार–पाँच पीढ़ियों का इतिहास लिखना–नाम, पेशा, सालों में आए परिवर्तन, देश परिवर्तन आदि। फिर घर में मौजूद सबसे पुरानी वस्तु की जाँच आरम्भ हुई। एक बार फिर बेचारे अनपढ़ माता–पिता का "ज्ञान" फूटकर बाहर निकला और बच्चों ने उसे लिखा। इस तरह से समुदाय का ज्ञान कक्षा में आ पहुँचा और चर्चा का, सोच–विचार का और अगर सम्भव हुआ तो किसी पैटर्न को देखने का विषय बन गया। जब बच्चों से पूछा गया कि उनके गाँव का नाम कैसे पड़ा तो पूरा समुदाय इसकी खोज में शामिल हो गया। कई भिन्न विवरण मिले और समुदाय बड़े उत्साह से बहस व तर्क–वितर्क में लग गया। और बच्चों ने विभिन्न विवरण लिखे।

इसके बारे में कैसे पता लगाया जाए?

इसका सबूत क्या है?

गाँव में मिट्टी के कितने प्रकार हैं?

कौन सी फसल कहाँ होती है और क्यों?

हर फसल की आवश्यकताएँ क्या हैं?

गाँव के विभिन्न शिल्प और अन्य व्यवसाय क्या हैं?

हमें यह सब कौन बता सकता है?

गाँव के किसान, गाँव के कारीगर?

क्या उन्हें कक्षा में लाया जा सकता है या बच्चों को उनके पास ले जाया जाए?

क्या बच्चे पहले आपस में चर्चा करके प्रश्नावली तैयार कर लें?

क्या हम सब मिलकर गाँव का नक्शा बना सकते हैं?

भूगोल के विषय में अब पूरा समुदाय शामिल हो गया था और वह रटने वाला एक उबाऊ विषय नहीं रह गया था। स्वनिर्वर को लगा कि यह बात स्कूल–समुदाय के जुड़ाव को एक और ही आयाम दे रही थी जिसमें स्कूल स्तरीय शिक्षण–अधिगम पूरे समुदाय में चल रहा था और सभी इसके साथ जुड़ रहे थे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 मानती है कि यह जुड़ाव शिक्षा सम्बन्धी कार्यों (जिसमें सभी सम्बद्ध लोगों को ज्ञान, कौशल और मूल्य प्रदान करना आ जाता है) को आगे ले जाने का वैध तरीका है।

निष्कर्ष

अभी बहुत सारा काम करना बाकी है। ऊपर उल्लिखित तीनों प्रयत्न समुद्र में बूँद के समान हैं। भारत के 99 प्रतिशत से अधिक स्कूलों में आज भी स्कूली शिक्षा को पाठ्यपुस्तकों के साधन के माध्यम से विद्यार्थियों व समुदाय पर शिक्षकों के आधिपत्य के रूप में देखा जाता है। लेखकों को पक्के तौर पर यह पता नहीं है कि अधिकांश शिक्षकों की मूलभूत प्रवृत्ति में बदलाव लाने के लिए किस प्रकार की क्षमता या वातावरण के निर्माण की जरूरत पड़ेगी। मौजूदा माहौल में अगर NCF 2005

शिक्षकों को दिया जाए तो उसका प्रयोग अमल में लाने के बजाए याद किए जाने वाले पाठ के रूप में किया जाएगा। जब नवीं कक्षा की एक लड़की पर यह ताना कसा गया कि क्या सर्वेक्षण करने के लिए स्वनिर्वर उसे पैसे दे रहा है तो उसने पंचायत के सदस्य को चुनौती दी कि गाँव की समस्याओं के बारे में उस सदस्य के और उसके स्वयं के ज्ञान की शुद्धता की परीक्षा ली जाए; और साफ शब्दों में यह भी कहा कि भविष्य में वह उस सदस्य से बेहतर पंचायत सदस्या बनेगी!! हमारे पास ऐसी स्कूल समुदाय जैविक प्रणाली कब होगी जो अधिकांश विद्यार्थियों को ऐसा साहस व ज्ञान–कौशल–मूल्य दे सके?

सुजीत सिन्हा वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में संकाय–सदस्य हैं। उन्होंने पश्चिम बंगाल के ग्रामीण विकास गैर सरकारी संगठन (स्वनिर्वर) में 20 से अधिक वर्षों तक काम किया है। यह संगठन शिक्षा, स्वास्थ्य, टिकाऊ कृषि, स्वयं सहायता समूह और आदर्श पंचायतों के निर्माण कार्य से जुड़ा हुआ था। सुजीत की प्राथमिक रुचि है–गाँधी और टैगोर के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को पुनः व्याख्यायित करके उन्हें आज और भविष्य के लिए प्रासंगिक बनाना। उनसे sujit.sinha@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।



नज़रुल हक़ कई वर्षों तक कई और काम करने के बाद हाल ही में विकास–क्षेत्र के साथ जुड़े हैं और सम्प्रति वे अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की "कार्य एवं शिक्षा" पहल के साथ काम कर रहे हैं। उनकी रुचि इस बात में है कि विकास पर एक वैकल्पिक चिन्तन करें और यह देखें कि स्कूल इस प्रकार की सोच में कैसे योगदान कर सकते हैं। उनसे nazrul.haque@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** नलिनी रावल



चपाती बनाम

शैक्षिक परिवर्तन की चुनौतियाँ

शशि नायर

जब हम शैक्षिक परिवर्तन की बात करते हैं तो हमें तीन महत्त्वपूर्ण व्यापक पहलुओं के बारे में सोचना पड़ता है–"क्या","कैसे" और "कौन"। हमें इस बात को लेकर स्पष्ट होना चाहिए कि क्या चीज बदलने के लायक है। उदाहरण के लिए हमें यह बात सुनिश्चित करनी चाहिए कि सभी शिक्षक कक्षा में उपस्थित हों और पढ़ा रहे हों। जाहिर है कि हमें और भी बहुत कुछ करना है! "क्या" के अन्तर्गत व्यक्तियों, संस्थाओं और प्रणाली के काम करने के तरीकों को बदलने की बात आती है क्योंकि जब तक वे वही सब करते रहेंगे जो वे आज कर रहे हैं तब तक कुछ भी नहीं बदलेगा, कुछ भी बेहतर नहीं होगा।

लेकिन "क्या" के बारे में बात करना उस पर अमल करने की तुलना में कहीं अधिक आसान है। उदाहरण के लिए हम यह कैसे सुनिश्चित करें कि सभी शिक्षक कक्षा में उपस्थित रहें और पढ़ाएँ। काम करने के तरीकों में हम यह बदलाव कैसे लाएँ?

इसके लिए हम एक सरकारी आदेश भेज सकते हैं लेकिन हमारा अनुभव हमें बताता है कि इससे काम नहीं चलता। हम पुलिस की तरह शिक्षकों की निगरानी कर सकते हैं लेकिन इसके लिए हमारे पास पर्याप्त लोग नहीं हैं। और अगर हम ऐसा करें भी तो भी हम इस बारे में कभी आश्वस्त नहीं हो पाएँगे कि शिक्षक पूरी प्रतिबद्धता और प्रेरणा के साथ शिक्षण कर रहे हैं। वास्तव में दुनिया भर में हुए अनुसन्धानों से पता चलता है कि बाह्य रूप से जवाबदेही लागू करने के अधिकतर प्रयास विफल रहे हैं। इस समस्या का समाधान करने के लिए एवं दूसरे कई तरीकों में बदलाव लाने के लिए हमें क्षमताओं के तीन सेटों की जरूरत है:

1. वास्तविक अन्तर्निहित समस्याओं को समझने के लिए हमें नैदानिक क्षमताओं की आवश्यकता है और शायद हमें यह जानकर आश्चर्य हो कि असल में समस्याएँ वे नहीं हैं जो हम समझ रहे हैं!
2. हममें उचित समाधानों का संश्लेषण करने की क्षमता होनी चाहिए और इसके लिए शैक्षिक बदलावों के वृहत ज्ञान की आवश्यकता है, जो हमें यह बतलाए कि कौन–सी चीज काम करेगी और कौन–सी नहीं।
3. इन समाधानों को कार्यान्वित करने के लिए हमें परिवर्तन के सुगमीकरण की उन क्षमताओं की जरूरत होगी जो अत्यन्त जटिल हैं और जिनके लिए बहुत विशेषज्ञता की आवश्यकता है।

तो हम यह देख सकते हैं कि "क्या" का उत्तर देने की तुलना में "कैसे" का उत्तर देना ज्यादा कठिन है।

"कैसे" से सम्बन्धित विचार हमें तीसरे महत्त्वपूर्ण व्यापक पहलू "कौन" की ओर ले जाता है यानि वह कौन होगा जिसे प्रभावी परिवर्तन सुगमकर्ता बनने के लिए विशेषज्ञता की आवश्यकता होगी। क्या यह काफी है कि प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग के कुछ लोग इसमें विशेषज्ञता हासिल कर लें? क्या ये थोड़े से लोग बड़ी संख्या में मौजूद व्यक्तियों, संस्थानों और प्रणाली की अनगिनत समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हो पाएँगे? यह स्पष्ट है कि जिस बड़े पैमाने पर हमें काम करना है उसके लिए हमें बड़ी संख्या में अत्यन्त दक्ष परिवर्तन सुगमकर्ताओं की जरूरत पड़ेगी।

अब तक तो यह स्पष्ट हो गया होगा कि हम वर्तमान में व्यक्तियों, संस्थानों और प्रणाली के काम करने के तरीकों में प्रभावी रूप से बदलाव लाने के लिए जो कुछ भी कर रहे हैं वह इस बात पर बहुत कम ध्यान देता है; हम शैक्षिक

बदलावों के वृहत ज्ञान का बहुत कम लाभ उठा रहे हैं; और हम बड़ी संख्या में अत्यन्त विशेषज्ञ परिवर्तन सुगमकर्ताओं को विकसित करने की दिशा में भी बहुत कम काम कर रहे हैं।

"क्या","कैसे" और "कौन" के बारे में संक्षेप में देखने के बाद आइए अब हम चौथे पहलू पर नजर डालें–"हम विशेषज्ञ परिवर्तन सुगमकर्ताओं को कैसे विकसित करें?"

यह तो लगभग नामुमकिन है कि ऐसी विशेषज्ञता आज के समय में इस्तेमाल किए जाने वाले परम्परागत साधनों अर्थात कक्षा प्रशिक्षण के माध्यम से विकसित हो जाए। ऐसा क्यों है–इसे समझने के लिए आइए हम बढ़िया नरम और फूली हुई चपाती बनाने के विज्ञान पर नजर डालें। हम इस विज्ञान के बारे में जानते हैं–पहले हम अच्छी तरह से आटा गूँधते हैं और उसे कुछ देर के लिए रख देते हैं ताकि उसमें सही स्तर की नमी और लचीलापन आ जाए। ऐसा करने से हम पतली–पतली चपातियाँ बेल सकते हैं। अब हम चपाती को तवे पर आँच पर रखते हैं और इस बात का ध्यान रखते हैं कि आँच एकदम सही तापमान पर हो। फिर हम उसे दोनों ओर से सिर्फ उतना सेंकते हैं जिससे एक पतली–सी परत बन जाए, जो भाप से अभेद्य हो। फिर हम चपाती को तब तक लौ पर पकाते हैं जब तक कि अन्दर बनी हुई भाप चपाती में छेद किए बिना उसकी परतों में पूरी तरह से भर न जाए–और इस प्रकार खाने के लिए बढ़िया, फूली हुई, नरम और गरम चपातियाँ तैयार हो जाती हैं। कुछ लोग इसे कला कह सकते हैं। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि विज्ञान को अच्छी तरह से समझकर प्रयोग में लाना कला है।

मैंने चपाती बनाने के बारे में जो चर्चा की है उसे पारम्परिक कक्षा प्रशिक्षण में साझा किया जा सकता है। वैसे इस बात की अधिक सम्भावना नहीं है कि केवल विज्ञान को जानकर कोई व्यक्ति पहली ही बार में बढ़िया चपाती बना लेगा। ऐसा क्यों है? क्योंकि ऐसी कई बातें हैं जो ऊपर बताए गए विज्ञान में नहीं बताई गई हैं जैसे कि नमी का सही स्तर क्या है? लचीलेपन का सही स्तर क्या है? आँच का सही स्तर क्या है? मुझे यह कैसे पता चलेगा कि चपाती की परत कितनी पतली हो कि उसमें भाप से छेद न होने पाए। इन अज्ञात सवालों के जवाब अनकहे ज्ञान में निहित हैं। वे आटा गूँधने वाले व्यक्ति की उँगलियों के स्पर्श ज्ञान में छिपे हैं। वे उस दिमाग में छिपे हैं जो यह जानता है कि कितनी आँच ठीक रहेगी। इस प्रकार का ज्ञान शब्दों में प्रभावी ढंग से व्यक्त नहीं किया जा सकता। उन्हें जानने के लिए व्यक्तिगत रूप से उनका अनुभव करना पड़ता है और यही विशेषज्ञता के विकास की कुंजी है।

आइए, अब हम इस उदाहरण का उपयोग यह समझने के लिए करें कि विशेषज्ञता कैसे विकसित होती है? विज्ञान को समझने वाला कोई भी व्यक्ति प्रयत्न–त्रुटि विधि के माध्यम से इस विशेषज्ञता को विकसित कर सकता है। लेकिन हमें यह पता लगाना है कि किसी नौसिखिए में विशेषज्ञों की मदद से इसे औपचारिक रूप से कैसे विकसित किया जाए। इसका एक प्रकट हिस्सा है ज्ञान जो विज्ञान को समझने से जुड़ा हुआ है–और जो दिया हुआ है। दूसरा हिस्सा है नौसिखिए के लिए खुद चपाती बनाने का प्रयास करने के लिए अवसर उपलब्ध कराना यानि अनुप्रयोग। तीसरा है कोचिंग जो विशेषज्ञ के लिए है कि वह नौसिखिए को अपनी सफलता और असफलता सम्बन्धी अनुभवों पर चिन्तन–मनन करने दे ताकि वे अपने अनुभवों को विज्ञान के साथ इस प्रकार से जोड़ सकें कि विज्ञान जीवन्त हो उठे और लगभग जादुई–सा हो जाए। पर्याप्त अनुप्रयोगों और चिन्तन–मनन की सहायता से नौसिखिए भी विशेषज्ञ बन जाएँगे। ऐसे लाखों लोग हैं जिन्होंने ऐसी चपातियाँ बनाने की विशेषज्ञता हासिल कर ली है कि जो मुँह में रखते ही घुल जाएँ।

कहने की जरूरत नहीं कि शैक्षिक परिवर्तन का सुगमीकरण चपाती बनाने की तुलना में कहीं अधिक जटिल है, लेकिन विशेषज्ञ परिवर्तन सुगमकर्ताओं के विकास के सिद्धान्त इनसे बहुत अलग नहीं हैं।

ऐसे दूसरे क्षेत्र भी हैं जो विशेषज्ञता के विकास के विचार को गम्भीरता से लेते हैं। उदाहरण के लिए चिकित्सा के क्षेत्र को ही ले लीजिए। इसमें वैसे तो ज्ञान की विशाल मात्रा की जरूरत है लेकिन बात वहीं खत्म नहीं होती। इनके अभ्यास और अनुप्रयोग के ढेर सारे अवसर भी हैं (कम से कम दुनिया के उन स्थानों पर जहाँ इसे पेशेवर ढंग से किया जाता है); और एक इंटर्न के रूप में, महत्त्वाकांक्षी चिकित्सक विशेषज्ञ डॉक्टरों के मार्गदर्शन में काम करते हैं, जो सीखने के लिए तैयार इन इंटर्न्स को व्यावहारिक रूप से अभ्यास करने का मौका देते हैं।

हम अपने शिक्षा के प्रक्षेत्र में ही देखें तो फिनलैंड में प्राथमिक स्कूल के शिक्षक के रूप में योग्यता पाने के लिए शोध पर आधारित स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करनी पड़ती है।

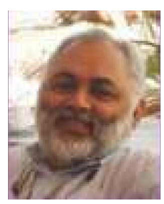
अब समय आ गया है कि हम यह बात समझें कि शैक्षिक परिवर्तन एक गम्भीर मुद्दा है और यह परिवर्तन तभी सम्भव है जब हम चीजों को अलग तरह से करें–

1. विज्ञान को समझें
2. परिवर्तन सुगमकर्ताओं को विशेषज्ञों के रूप में विकसित करने का प्रयत्न करें, और
3. उनका महत्त्वपूर्ण समूह बनाएँ

अगर हम ऐसा न करें तो क्या परिवर्तन की उम्मीद कर सकते हैं?

हमारे देश में एक आम धारणा यह है कि यहाँ की शिक्षा नीतियाँ तो अच्छी हैं लेकिन समस्या उनके कार्यान्वयन को लेकर है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि ऐसा नहीं है। अगर नीतियों का कार्यान्वयन नहीं किया जा सकता तो वे "अच्छी" नीतियाँ नहीं हैं, वे मात्र इच्छा–सूचियाँ बनकर रह जाती हैं। किसी नीति के कार्यान्वयन के लिए उसके साथ ऐसे निर्णयों का होना जरूरी है (यानि कि अन्य सहायक नीतियों का) जो ऐसी समर्थकारी परिस्थितियाँ पैदा करें कि उनका कार्यान्वयन हो सके। वर्तमान में "क्या" को तो नीति निर्माताओं पर छोड़ दिया जाता है और परिवर्तन को "कैसे" लाया जाए –इस बात को बुनियादी स्तर पर काम करने वालों पर छोड़ दिया जाता है। ये काम करने वाले समर्थकारी परिस्थितियों के अभाव में नीतियों को लागू करने में संघर्षरत रहते हैं और "कार्यान्वयन की विफलता" का आरोप भी ढोते हैं। फिर भी शैक्षिक परिवर्तनों पर किए गए दशकों के शोध हमें बताते हैं कि "कैसे" की तुलना में "क्या" काफी आसान होता है। दिलचस्प बात यह है कि जब हम "कैसे" को समझ जाते हैं तो "क्या" अपने आप बदल जाता है (पर यह एक अलग कहानी है)। जो नीतियाँ शैक्षिक परिवर्तन के ऐसे शोधों को समझे बिना बनाई जाती हैं वे अच्छी नीतियाँ प्रतीत तो हो सकती हैं, लेकिन दुनिया भर में हुए शोध हमें बताते हैं कि उन्हें लागू नहीं किया जा सकता। शैक्षिक परिवर्तन को समझे बिना बेहद नेकनीयती से बनाई गई नीतियाँ भी बड़ी आसानी से बोझ को नीति निर्माताओं पर न डालकर काम करने वालों पर डाल देती हैं और इसका परिणाम भी वही होता है "कार्यान्वयन की विफलता"।

अब वक्त आ गया है कि हम यह "बोझ" नीति निर्माताओं को लौटा दें। लेकिन हम किस "बोझ" की बात कर रहे हैं? हम ऐसी नीतियाँ बनाने की बात कर रहे हैं जो लागू करने योग्य हों, जो समर्थकारी परिस्थितियों की रचना करें, जो इस बात पर आधारित हों क्या बात कारगर होगी और कैसे। अब समय आ गया है कि नीति के निर्माता शैक्षिक परिवर्तन पर हुए शोधों को समझें, शैक्षिक परिवर्तन के "क्या","कैसे" और "कौन" का जवाब देना शुरू करें और परिवर्तन सुगमकर्ताओं का ऐसा समूह तैयार करें जो शैक्षिक परिवर्तन लाने में सक्षम हों।



शशि नायर ने आई.आई.टी. मद्रास से सिविल इंजीनियरिंग और आई.आई.एम. बेंगलूरु से एम.बी.ए. की पढ़ाई की है। उन्होंने 17 वर्षों तक आई.टी. प्रशिक्षण और शिक्षा के क्षेत्र में काम किया है जिनमें से 14 वर्ष वे सी.ई.ओ. रहे। 2006 से वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ हैं। उन्होंने पब्लिक स्कूल शिक्षा प्रणाली के साथ बहुत निकटता से काम किया है। साथ ही उन्होंने उन प्रणालीगत बाधाओं का अवलोकन करके उनके समाधानों की पहचान की है जिनके कारण आई.ए.एस. अधिकारी से लेकर शिक्षकों तक के विभिन्न स्तर वाले लोगों के लिए प्रणाली में सुधार लाना मुश्किल हो जाता है। उन्होंने विभाग के भीतरी परिवर्तन का सुगमीकरण करने वाले बड़े पैमाने के कार्यक्रमों पर भी काम किया है। सम्प्रति वे अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं जहाँ उनकी अभिरुचि शैक्षिक परिवर्तन; निदान, डिजाइन व स्कूली शिक्षा प्रणाली का दृढ़ीकरण एवं शिक्षा नेतृत्व व प्रबन्धन में है। उनसे shashi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** नलिनी रावल

समावेशी शिक्षा - आगे की राह

प्रमिला बालासुन्दरम

"समावेशी शिक्षा" लगभग विश्व भर में स्वीकार्य मुहावरा बन चुका है। इसके बावजूद लगता है कि अब भी शब्द "समावेशी" की व्याख्या और उसके अमल में कुछ अन्तर हैं। समावेशी शिक्षा की अवधारणा अलगावी, असमावेशी नीतियों और प्रथाओं को चुनौती देने की वैश्विक मुहिम के तौर पर उभरकर आई है और मुख्यधारा के स्कूलों में सभी बच्चों की सीखने सम्बन्धी आवश्यकताओं से रू–ब–रू होने का प्रभावी दृष्टिकोण बन गई है। संक्षिप्त में, 'समावेश' इस बात का संकेत है कि अक्षमता से जूझते लोगों को शैक्षिक, रोजगार की, उपभोक्ता के तौर पर, मनोरंजक, सामुदायिक और घरेलू गतिविधियों में पूर्ण रूप से हिस्सेदारी के लिए मौका हो। इसमें बौद्धिक तौर पर अक्षम लोगों की बात भी शामिल है। विशेषतौर से इन लोगों के लिए स्वीकार्य जीवन–शैली की खोज कई मील–पत्थर पार कर चुकी है, जैसे कि सामान्यीकरण का सिद्धान्त, एकीकृत शिक्षा, और अन्त में, यू.एन.सी.आर.पी.डी.(युनाइटिड नेशन्स कन्वेन्शन ऑन द राइट्स ऑफ पर्सन्स विद डिसएबिलिटीज़)।

बौद्धिक अक्षमताओं वाले बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताएँ पूरा करने की सम्पूर्ण रणनीति पिछले एक दशक में बहुत हद तक परिवर्तित हुई है और भारत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाली घटनाओं की गति के साथ चलने की कोशिश में है। मगर हमें समझना चाहिए कि जो पश्चिम के लिए ठीक है आवश्यक नहीं कि वह भारत के लिए भी सही होगा। अब तक के अमल का नतीजा है कि बौद्धिक अक्षमता वाले बच्चों के लिए अलग से विशेष शैक्षिक व्यवस्थाएँ की गई हैं। मगर इसकी वजह से सामाजिक स्तर पर उन्हें अलगाव और पृथकता का सामना करना पड़ा है। बच्चे के जीवन की शुरुआत से ही अलग–अलग संसार बना दिए जाते हैं। स्कूल के पहले साल से ही बच्चे पर समाज का प्रभाव आने लगता है। इसके विपरीत, समावेशी शिक्षा एक अधिक समावेशी ऐसे समाज की बुनियाद रख सकती है जिसमें "भिन्नता" को स्वीकार्य माना जाए और उसे मानवता तथा उसके विभिन्न रूपों के हिस्से के तौर पर मूल्यवान समझा जाए। इसलिए समावेशी शिक्षा के लिए बुनियादी तर्क केवल शैक्षिक ही नहीं है, उसके लिए ठोस सामाजिक और नैतिक तर्क भी हैं। हमें पृथकता के खतरों और लम्बे दौर में उसके प्रभाव के बारे में भी सचेत रहना चाहिए।

शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था में समावेश की बात को कैसे लागू किया जाए? कुछ स्थितियों का सामना करते हुए उनसे सम्बोधित होना होगा। सर्वप्रथम हमें समझना होगा कि समावेशी शिक्षा स्कूल के द्वार पर ही समाप्त नहीं हो जाती। उसकी पहुँच प्रशिक्षण, रोजगार और अपने लिए सबसे उपयुक्त जीवन–शैली के चयन के मौकों तक जाती है। इसका अर्थ है कि बौद्धिक तौर पर अक्षम लोग भी अपने निर्णय स्वयं ले पाएँ, विशेषतौर से उन पक्षों पर जो उनके जीवन को प्रभावित कर सकते हैं। और इसका अर्थ एक ऐसे जागरूक समुदाय का होना है जिसमें बिल्कुल निकट परिवार और वृहद समुदाय से मदद भी शामिल हो। दूसरा, हमें उन बच्चों के माता–पिता से भी प्रतिक्रियाओं की आशा रखनी चाहिए जिनके बच्चे अक्षमता के शिकार नहीं हैं क्योंकि इसके बारे में बहुत–सी आशंकाएँ और गलत व्याख्याएँ हैं। ध्यान में यह भी रखना होगा कि भारत में एक अलग ही प्रस्थान–बिन्दु है क्योंकि हमारे पास



शिक्षा के पश्चिमी मॉडल पर आधारित स्थापित स्कूली व्यवस्था पहले से मौजूद है।

कुछ महत्त्वपूर्ण बदलाव लाने होंगे। सबसे बड़ा सवाल है – क्या हमें शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था को ध्वस्त करना होगा और भूमिकाएँ तथा दायित्व फिर से स्थापित करने होंगे? स्पष्ट है कि हम यह तो नहीं कर सकते। अक्षमताओं से जूझते बच्चों को विशेष किस्म के शिक्षक तो चाहिए, उन्हें विशेष किस्म के संसाधन, विशेष कार्य–प्रणालियाँ और कभी–कभी विशेष किस्म का वातावरण भी चाहिए होता है। ये तथाकथित 'विशेष प्रणालियाँ' आमतौर पर अच्छी, बाल–केन्द्रित शिक्षण प्रथाओं से अधिक कुछ नहीं हैं जो वैसे भी सब बच्चों के लिए लाभदायक होंगी। ध्यान ऐसे हालात बनाने के तरीके ढूँढने पर केन्द्रित होना चाहिए जो विद्यार्थियों की विविधता के लिए गुंजाइश रखें और सब बच्चों के सीखने में मददगार हों। चुनौती केवल यह नहीं है कि विशेषज्ञ शिक्षाविदों की दक्षताएँ प्रयोग में लाई जाएँ बल्कि यह भी कि नियमित स्कूलों में शिक्षकों की मदद के लिए तरीके निकाले जाएँ ताकि वे इन विशेषज्ञ शिक्षाविदों के साथ आदान–प्रदान के दम पर कक्षा में विविधता से मुखातिब हो पाएँ।

अनुसंधान से पता चलता है कि सामान्यतौर पर अच्छा शिक्षण बाल–केन्द्रित शिक्षा पद्धति और शिक्षा सम्बन्धी प्रेरक माहौल पर आधारित होता है। यह मानकर चलना सही नहीं है कि तथाकथित विशेष तकनीकें विशेष शिक्षकों द्वारा ही प्रदान की जा सकती हैं। इसलिए समावेश का सम्बन्ध विशेष शिक्षा को अधिक समावेशी बनाने से नहीं है बल्कि सामान्य शिक्षा को समावेशी बनाने के बारे में है। अधिकतर दक्ष शिक्षक इस सम्बन्ध में जागरूक हैं और अपनी विशेषज्ञता को इसके लिए प्रयोग में लाते हैं। और यह विषमता तथा विविधता लिए हुए समूह में सबसे बेहतर हो पाता है – यह अच्छा भी है क्योंकि जीवन भी वैविध्य भरा ही होता है। विश्व भर में जहाँ भी स्कूलों में समावेशी शिक्षा है, वहाँ से प्राप्त प्रमाण से ज्ञात होता है कि अक्षम बच्चों को अन्य बच्चों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। यह नहीं है कि विशेष–शिक्षा के शिक्षक लुप्त हो जाएँ। उनकी आवश्यकता मुख्य धारा के स्कूलों में अक्षमता से जूझते बच्चों के साथ होने वाले काम में मदद सम्बन्धी नए दायित्व निभाने के लिए रहेगी – उनका काम बदल जाएगा। अब उन्हें विशेष–शिक्षा के विशेषज्ञों से मदद के सहारे अक्षमता के बारे में अधिक ज्ञान हासिल करने के लिए प्रयास करने होंगे और इन स्थितियों को सुलझाने के लिए, उन पर प्रतिक्रिया के लिए, तौर–तरीके विकसित करने होंगे। इसके लिए पाठ्यचर्या में बदलाव, विषयवस्तु और शिक्षण के तरीकों आदि पर पुनर्विचार की



आवश्यकता हो सकती है। इससे भी बढ़कर, आवश्यकता पड़ सकती है रचनात्मक तरीकों को चिह्नित करने की, जिनकी मदद से कक्षा में बच्चों की विभिन्नता से सम्बोधित हुआ जा सके। कक्षा का कमरा सीखने के बहुत से मौके देता है क्योंकि बच्चे अपने समकक्षों को स्वीकारने और सहायता से भी सीखते हैं – और यहीं से समावेश की शुरुआत होनी चाहिए।

भारत में एक ओर तो विशिष्ट शैक्षिक संस्थाओं और दूसरी ओर सामान्य, गरीब संस्थाओं के बीच की विषमता इतनी अधिक है कि उसके बारे में शायद बात भी नहीं की जा सकती। हमें इन स्कूलों की वर्तमान स्थितियों की पड़ताल करनी चाहिए। 40 या इससे अधिक विद्यार्थियों पर 1 शिक्षक के अनुपात वाली कक्षाओं की स्थिति में तो समावेश की बात लागू करने से पहले गहरे अध्ययन की आवश्यकता है। इसके मुख्य तत्वों को शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों का हिस्सा होना चाहिए लेकिन और भी महत्त्वपूर्ण है कार्यरत शिक्षकों के प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाना। अन्य देशों के अनुभव ने दिखाया है कि एक छोटे प्रशिक्षण–सत्र के मुकाबले पूरे स्कूल को शामिल करते हुए निरन्तर होने वाले स्कूल–आधारित शिक्षकों के प्रशिक्षणों और विकास कार्यक्रमों की प्रासंगिकता अधिक है। बहुस्तरीय शिक्षण तथा आंशिक भागीदारी जैसी तकनीकों के साथ–साथ हॉवर्ड गाड्र्नर के बहुबुद्धियों के सिद्धान्त पर आधारित शैक्षिक योजना को भी समावेशी शिक्षा के लिए बनाए जाने वाली योजना में शामिल होना चाहिए।

'समाधान' की समावेश की व्याख्या उसके शुरुआती अनुभव से निकली और उसने तब जोर पकड़ा जब समावेश सरकारी और शैक्षिक, दोनों तरह की संस्थाओं के लिए केन्द्र में आया। एक सामान्य बच्चे को विशेष–शिक्षा के अपने यूनिट में प्रवेश देना तो हमारे लिए आसान था मगर बौद्धिक अक्षमता से जूझते बच्चे को मुख्यधारा के स्थानीय स्कूल में प्रवेश दिलवाना मुश्किल था। इसलिए हालाँकि हम सामान्य और अक्षमता से जूझते, दोनों तरह के बच्चों को अपने विशेष–शिक्षा यूनिट में प्रवेश देते रहे,

हम बौद्धिक अक्षमता वाले बच्चे को उस अकादमिक स्तर तक लाने के लिए भी काम करते रहे जिस तक पहुँचकर वह मुख्यधारा के स्कूल के साथ सामंजस्य बैठा पाए। इन बच्चों को मुख्यधारा के स्कूलों में दाखिले की हमारी रणनीति तीन बातों पर ध्यान केन्द्रित करती थी – समावेशी शिक्षा को देखने के समुदाय के नकारात्मक नजरिए को समाप्त करना या कम से कम इस चेतना को घटाना; मुख्यधारा के स्कूलों के मुखियाओं और शिक्षकों में इस बारे में ज्ञान के अभाव को दूर करना; और विशेष तौर से अक्षमता से बचे हुए बच्चों के माता–पिता की उस सोच को प्रभावित करना जिसके तहत वे अपने बच्चों का बौद्धिक तौर पर अशक्त बच्चों के "साथ बैठना" भी नहीं स्वीकारते। इसी के साथ इमारतों, खेल के मैदानों, शौचालयों (विशेष तौर से लड़कियों के लिए) का न होना और सामान्य तौर पर बौद्धिक या किसी भी अन्य किस्म की अक्षमता के लिए सहायक मूलभूत ढाँचे के पूर्ण रूप से अभाव की बात भी थी।

निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर की कालोनियों में से कुछ चिह्नित कालोनियों में यह जानने के लिए सर्वेक्षण किया गया कि स्थानीय स्कूलों में समावेशी प्रथाओं के बारे में ज्ञान और जागरूकता की स्थिति क्या है। इससे रणनीति के स्तर पर कई योजनाबद्ध हस्तक्षेपों की शुरुआत करने में मदद मिली। मुख्यधारा के कुछ स्थानीय स्कूलों के शिक्षकों की कार्यशाला में समावेशी शिक्षा पर उनके विचारों, इस शिक्षा को उनके स्कूल में स्वीकार किए जाने, सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों और नीतियों, उनके स्वयं के दृष्टिकोणों और इसका कि 'समावेश' क्या होना चाहिए, दस्तावेजीकरण किया गया। परिणाम आँखें खोलने वाले थे और इनसे मुख्यधारा के स्थानीय स्कूलों में समावेश की अवधारणा पर नियमित, आवश्यकता–आधारित कार्यशालाएँ सूत्रबद्ध करने में भी मदद मिली।

इस सबका सकारात्मक निष्कर्ष यह था कि जिन माता–पिता और शिक्षकों से हम मिले, उन्हीं में से हम मदद करने वाला एक सहायक समूह भी बना पाए। प्रारम्भिक प्रशिक्षण और कार्यशालाओं में अनिवार्य उपस्थिति के बाद उन्होंने पैरोकारों का एक केन्द्रीय समूह बना लिया जिसने समुदाय के साथ समावेश का सन्देश साझा किया। इसी के साथ, हमने समावेशन के लाभों को कई तरह के समूहों के बीच साझा करने के लिए खुली चर्चा का एक मंच भी जारी रखा। व्यापक समुदाय को कठपुतली थिएटर, नुक्कड़ नाटक, अनौपचारिक बातचीत और स्वास्थ्य कैम्पों के माध्यम से समावेशी शिक्षा के प्रति संवेदनशील बनाते हुए ऐसी शिक्षा के हक में माहौल बनाने के मौके तलाशे गए।

सर्वेक्षण 91 स्कूलों में किया गया और इस प्रकार मुख्य धारा के उन स्कूलों के साथ सकारात्मक साझेदारी स्थापित की गई जो बौद्धिक तौर पर अक्षमता के शिकार उन बच्चों को दाखिला देते हैं जो हमारे विशेष शिक्षा यूनिट से उत्तीर्ण होकर निकलते हैं। हमने 5 से 10 वर्ष की आयु वाले बच्चों को म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन, दिल्ली के प्राइमरी स्कूलों में दाखिल करवाया है।

फिर से बल देकर कहें तो समावेशन का अर्थ केवल इतना नहीं है कि अक्षमताओं से जूझते बच्चों को स्कूल "जाने की इजाजत हो"। यह केवल एक लक्ष्य नहीं है। यह एक प्रक्रिया है। यह समानान्तर शैक्षिक व्यवस्थाएँ बनाने या व्यक्तिगत अधिकारों की बात नहीं है और निश्चित तौर पर मौजूदा शैक्षिक व्यवस्था में "फिट" होने की बात भी नहीं है। समावेशी शिक्षा लचीली होती है। बल सीखने पर होता है न कि शिक्षण पर। 'समाधान' की पहलकदमी से प्रकट होता है कि समावेशी शिक्षा लागू की जा सकती है। सबसे बढ़कर, यह सब बच्चों के लिए शिक्षा के मौकों की समानता की बात है।

References

- Lindqvist, B. (1994) *Special Needs Education: Conceptual Framework, Planning and Policy Factors*. Paper presented at the World Conference on Special Needs Education, Salamanca, Spain (From: NU News on Health Care in Developing Countries 2/95, vol.9)
- Ture Johnsson, (2003) Inclusive education CD developed for CBR Network's distance education programme
- Inclusion. *What is in a name?* Diane Richler. Past President, Inclusion International.
- "*Inclusive Education is good common sense*" by Pramila Balasundaram in Mentor magazine, 2011 Bangalore.

प्रमिला बालासुन्दरम 1981 में स्थापित स्वैच्छिक संस्था समाधान की संस्थापक एवं संरक्षक हैं। समाधान का ध्यान बौद्धिक रूप से विकलांग बच्चों की समस्याओं पर है। नई दिल्ली में समाधान के दो केन्द्र ऐसे बच्चों की शुरुआती पहचान करने, उनका उपचार करने और समावेशी शिक्षा देने का काम करते हैं। ये केन्द्र ऐसे बच्चों की माताओं को ऐसे कौशल सिखाने में भी मदद करते हैं, जिनसे उन्हें कुछ आय हो सके। विकलांगता और गरीबी के बीच सम्बन्ध जोड़ने, महिला सशक्तीकरण में समुदाय को शामिल करने तथा स्थानीय संसाधनों का उपयोग करने के नवाचार के लिए उन्हें वर्ल्ड बैंक ने सम्मानित किया है। उनसे lila.bala@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** रमणीक मोहन



स्कूल में

उत्पीड़न से सुरक्षा एवं स्वतन्त्रता

सौम्या भास्करन

शेखर शेषाद्रि

हर रोज दुनिया भर में हजारों बच्चे उत्पीड़न व उपेक्षापूर्ण स्थितियों का सामना करते हैं। इसमें हस्तक्षेप करने का दायित्व मात्र किसी एजेंसी या संगठन का नहीं है, यह तो पूरे समुदाय की जिम्मेदारी है।

दुनिया भर के बच्चों के 19 प्रतिशत बच्चे भारत में बसते हैं। भारत के 13 राज्यों के 12447 बच्चों के साथ किए गए एक अध्ययन से यह पता लगा है कि छोटे बच्चों को उत्पीड़न और शोषण का खतरा सबसे ज्यादा है। 12447 बच्चों में से दो तिहाई बच्चों का शारीरिक उत्पीड़न हुआ, 50 प्रतिशत से अधिक बच्चों ने विभिन्न प्रकार के यौन शोषण का सामना किया और हर दूसरा बच्चा भावनात्मक शोषण का सामना कर रहा था।

बच्चे अपने समय का बड़ा भाग स्कूल में बिताते हैं। स्कूलों की जिम्मेदारी न केवल शैक्षिक बातों को सिखाना है वरन वे बच्चों के सामाजिक एवं भावनात्मक विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यही वह स्थान भी है जहाँ बच्चे परिवार के बाहर पहली बार अपने साथियों व वयस्कों के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं और ये पारस्परिक सम्बन्ध बच्चों के विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः स्कूल का प्रतिकूल वातावरण उन्हें कमजोर बना सकता है। इसलिए स्कूलों के लिए यह जरूरी है कि वे बच्चे में सकारात्मक परिवर्तन लाने और उसके सर्वांगीण विकास के लिए खुद को समर्थ बनाएँ। जब बात बच्चों और किशोरों को उत्पीड़न से सुरक्षा दिलाने एवं स्वतन्त्रता सुनिश्चित कराने की हो तो स्कूलों की भूमिका विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

इस दिशा में पहला कदम यह होगा कि हम शिक्षकों में इस बात की जागरूकता बढ़ाएँ कि स्कूली बच्चों के साथ हर तरह का दुर्व्यवहार होता है। साथ ही उत्पीड़न सम्बन्धी मुद्दों पर शिक्षकों की राय की गहन खोज की जानी चाहिए। यह आवश्यक है कि शिक्षकों को शारीरिक, भावनात्मक व यौन उत्पीड़न एवं उपेक्षा तथा इस तरह के अपमानजनक अनुभवों के अल्पकालिक व दीर्घकालिक हानिकारक परिणामों के बारे में जो भी जानकारी है वह दी जाए ताकि उसके आधार पर आगे बढ़ा जा सके।

शिक्षक प्रतिदिन बच्चों के सम्पर्क में रहते हैं और इसलिए वे उत्पीड़न की वजह से होने वाले शारीरिक तथा व्यवहार सम्बन्धी संकेतों को पहचानने के लिए पूरी तरह से सक्षम होते हैं। ये संकेत इस प्रकार के हो सकते हैं–शैक्षिक प्रदर्शन में अत्यधिक अस्थिरता, बेहद शत्रुता का भाव व क्रोध, निष्क्रिय होना, निर्लिप्तता, बात न करना या ऐसा ही कोई आकस्मिक परिवर्तन। शिक्षक परिवार से मिलने वाले संकेतों की सहायता से ऐसे बच्चों को भी पहचान सकते हैं जिनके परिवार वाले ही उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं; जिनके माता–पिता लगातार उन्हें दोषी ठहराते हैं या छोटा दिखाते हैं, अन्य भाई–बहनों की तुलना में नकारात्मक दृष्टि से देखते हैं, उनके बारे में उदासीन रहते हैं और उनकी समस्याओं पर चर्चा करने से इनकार करते हैं।

शिक्षकों को कार्यशालाओं के माध्यम से यह सिखाया जाना चाहिए कि उत्पीड़न के बारे में पता चलने पर कैसे प्रतिक्रिया करनी चाहिए। ऐसे शिक्षकों के लिए यह जरूरी है कि वे बच्चों को यथासम्भव आश्वासन दें, बच्चे ने जो कुछ बताया है उस पर तीव्र प्रतिक्रिया करने से बचें, उसे सहारा दें और उसकी तारीफ करें कि उसने यह सब बताया। बच्चे को यह आश्वासन देना चाहिए कि जो कुछ हुआ उसमें उसकी कोई गलती नहीं है। हो सकता है कि बच्चा इस बात से डरता हो कि उसे घर से ले जाया जाएगा या उसके माता–पिता को गिरफ्तार कर लिया जाएगा। अगर इस तरह का भय व्यक्त किया जाता है तो शिक्षक को यह बात मान लेनी चाहिए कि उसे नहीं पता कि क्या होगा। इस सिलसिले में यह ध्यान में रखना चाहिए कि "यौन अपराधों के खिलाफ बच्चों के संरक्षण के

अधिनियम 2012" के अनुसार पुलिस में ऐसे अपराधों की रिपोर्ट करना अनिवार्य है। ऐसा न करना कानून द्वारा दण्डनीय है जिसके तहत छह महीने का कारावास या जुर्माना या दोनों की सजा दी जा सकती है।

बाल उत्पीड़न और शारीरिक शोषण से निपटने के लिए हर स्कूल में रिपोर्ट दर्ज कराने की प्रक्रिया और स्पष्ट रूप से परिभाषित प्रोटोकोल होना चाहिए। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा (आर.टी.ई.) अधिनियम, 2009 में "शारीरिक दण्ड" और "मानसिक उत्पीड़न" पर प्रतिबन्ध लगाया गया है और इन्हें दण्डनीय अपराध माना गया है। स्कूलों को ऐसी प्रक्रियाओं की जरूरत है जो यह सुनिश्चित करें कि उचित लोगों को सूचित किया जा रहा है, विचार–विमर्श आयोजित किए जा रहे हैं और विद्यार्थी की स्थिति के बारे में उन सभी को बताया जा रहा है जिन्हें यह बात जानने की जरूरत है।

जब कोई बच्चा इस बात की रिपोर्ट करता है कि उत्पीड़न में स्कूल का ही कोई कर्मचारी शामिल है तो ऐसी हालत में बच्चे को विशेष सुरक्षा की जरूरत होती है और यह बात याद रखनी चाहिए। इसकी रिपोर्ट करने के लिए बहुत साहस की जरूरत होती है। यदि स्कूल के किसी कर्मचारी के खिलाफ आरोप लगाया जाए तो शिक्षक को स्कूल की नीति एवं प्रक्रिया का पालन करना चाहिए।

उत्पीड़न और उपेक्षा को रोकने के लिए बाल उत्पीड़न की पहचान एवं रिपोर्टिंग महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन साथ ही स्कूलों को ऐसे कार्यक्रमों के साथ भी जुड़ना चाहिए जिनका उद्देश्य बच्चों में विकासात्मक दृष्टि से उपयुक्त कौशलों का विकास करके उन्हें सशक्त बनाना हो और उत्पीड़न को रोकना हो।

चैन्नई के एक गैर सरकारी संगठन TULIR द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार, इसमें भाग लेने वाले चैन्नई के स्कूलों के कुल 2211 बच्चों में से 42 प्रतिशत बच्चों ने किसी न किसी रूप में यौन उत्पीड़न का सामना किया था। इसलिए यह जरूरी है कि स्कूलों में नियमित रूप से आत्म–सुरक्षा कार्यशालाएँ आयोजित की जाएँ। इनसे बच्चों को खुद का बचाव करने में मदद मिलेगी, विशेष रूप से यौन उत्पीड़न से। आत्म–सुरक्षा पाठ्यक्रम में इन बातों को सीखना शामिल है– यौन उत्पीड़न, शरीर स्वामित्व, सुरक्षित–असुरक्षित एवं भ्रामक स्पर्श, असुरक्षित स्पर्श का जवाब देना और बच्चों को सम्भावित उत्पीड़कों के बारे में जागरूक करना एवं ऐसे बदमाशों से निपटना।

वैसे तो बच्चों के लिए निर्धारित आत्म–सुरक्षा शिक्षा की आलोचना की जाती है कि इनके कारण बच्चों को यह महसूस होने लगता है कि अगर उनका उत्पीड़न हुआ है तो इसका कारण वे स्वयं हैं; उनमें अजनबियों के प्रति चिन्ता और भय का भाव एवं खतरे का बोध भी बढ़ जाता है। लेकिन ज्यादातर अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि जिन बच्चों ने इस प्रकार के रोकथाम सम्बन्धी कार्यक्रमों में भाग लिया था उनमें इस बात की सम्भावना अधिक थी कि वे इस कार्यक्रम में सीखी गई आत्म–रक्षात्मक रणनीतियों का उपयोग करें और वे ऐसा करने को लेकर आश्वस्त भी थे।

वयस्कता की ओर प्रभावी रूप से बढ़ने के लिए यह जरूरी है कि बच्चे और किशोर कुछ ऐसे कौशलों में महारत हासिल करें जो जीवन में आगे बढ़ने के लिए अपरिहार्य हैं। जीवन के कौशलों का प्रशिक्षण शिक्षण–अधिगम की एक अंतःक्रियात्मक प्रक्रिया है जो ज्ञान, अभिवृत्ति व कौशलों को प्राप्त करने पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है और जिनसे हम अपने जीवन की अधिक से अधिक जिम्मेदारी लेने में सक्षम होते हैं क्योंकि इस प्रशिक्षण के कारण हम जीवन सम्बन्धी स्वस्थ विकल्प चुन पाते हैं, हममें नकारात्मक दबावों के प्रति अधिक प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाती है तथा हम हानिकारक व्यवहारों को न्यूनतम कर पाते हैं। इसमें ये मूलभूत कौशल शामिल होते हैं जैसे समस्या को हल करना, समीक्षात्मक चिन्तन, रचनात्मक चिन्तन, निर्णय लेना, भावनाओं का सामना करना, पारस्परिक कौशल, सम्प्रेषण, समानुभूति, तनाव का सामना करना एवं आत्म–जागरूकता। चूँकि जीवन–कौशलों की शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है इसलिए इसे केवल जानकारियों या चर्चा के आधार पर सीखा या बढ़ाया नहीं जा सकता। इसमें अनुभवजन्य विधियों जैसे नाटक, खेल और कहानी सुनाने को शामिल किया जाना चाहिए क्योंकि इन तरीकों में प्रक्रिया व विषयवस्तु, अधिगम व बाहरी दुनिया के साथ जुड़ने की क्षमता तथा आत्म–चिन्तन की क्षमता को प्रखर करने जैसी बातों का मिश्रण होता है। स्कूल के बच्चों के लिए जीवन कौशल शिक्षा का जो कार्यक्रम NIMHANS द्वारा तैयार किया गया है, उसके तात्पर्य व प्रभावों के अध्ययन से यह पता चला है कि नियन्त्रित समूह की तुलना में इस शिक्षा को प्राप्त करने वाले बच्चे स्कूल व अपने शिक्षकों के साथ बेहतर रूप से समायोजन कर पाते थे और उनमें स्थितियों का सामना करने की क्षमता भी अधिक थी।

बाल उत्पीड़न की रोकथाम के लिए विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से बच्चों में कौशलों का विकास करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है लेकिन अगर हम अपनी पूर्ण क्षमता तक पहुँचने व एक लचीला वयस्क बनने में उनकी मदद करना चाहते हैं तो यह बात भी जरूरी है कि स्कूल का वातावरण सुरक्षित, समावेशी और स्वीकारी हो। फ्लोरिडा त्रासदी के बाद, जिसमें एक साइबर उत्पीड़न के कारण एक बच्चे ने

आत्महत्या कर ली और इस अपराध के लिए 12 व 14 वर्ष की दो बालिकाओं को हिरासत में ले लिया गया, आज यह बात आवश्यक हो गई है कि स्कूलों में एक प्रभावी व व्यापक उत्पीड़न विरोधी पहल की शुरुआत की जाए। उत्पीड़न विरोधी पहल के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें उत्पीड़न की प्रबलता व बारम्बारता का आकलन करना शामिल है। इस बात का प्रयास करना चाहिए कि उत्पीड़न के खिलाफ एकीकृत सन्देश भेजने के लिए समुदाय में हर किसी को शामिल किया जाए। आचार–संहिता, स्कूलव्यापी नियम तथा उत्पीड़न रिपोर्टिंग प्रणाली का निर्माण करने की जरूरत है जिससे स्कूल में एक ऐसे वातावरण का निर्माण करने में मदद मिले जिसमें उत्पीड़न अस्वीकार्य हो। इसे जागरूकता अभियान के माध्यम से व्यापक रूप से प्रचारित किया जाना चाहिए। साथ ही ऐसे प्रयास भी किए जाने चाहिए जिनसे स्कूल में सहिष्णुता, स्वीकार्यता व सम्मान की संस्कृति का विकास हो ताकि सकारात्मक सामाजिक सम्बन्धों और समावेशीकरण को प्रोत्साहन मिले।

बाल उत्पीड़न की रोकथाम के लिए स्कूल की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए यह जरूरी है कि सारे स्कूल बाल सुरक्षा नीति का विकास करें जो इस सम्बन्ध में स्कूल की भूमिका, जिम्मेदारियों व अभ्यासों को सम्बोधित करे। जब हम बच्चे के सर्वोत्तम हित में किसी हस्तक्षेप के बारे में सोचते हैं तो यह जरूरी हो जाता है कि हम इन बातों में बच्चे की सक्रिय भागीदारी के माध्यम से उसके परिप्रेक्ष्य को भी जान लें तथा उनकी जरूरतों व अनुभवों को मान्यता और प्राथमिकता दें।

यदि बच्चों को एक सशक्त परिवार और सहयोगी समुदाय का समर्थन मिले तो उनके लिए विकास करना और सीखना आसान हो जाता है। स्कूल इस प्रकार की गतिविधियाँ आयोजित कर सकते हैं जिनसे माता–पिता को सफल होने में मदद मिले और बाल उत्पीड़न व उपेक्षा की रोकथाम हो सके जैसे कि माता–पिता के लिए ऐसी कार्यशालाओं का आयोजन करना जिनमें प्रभावी अनुशासन, माता–पिता व बच्चे का सम्प्रेषण तथा इंटरनेट सुरक्षा जैसे लालन–पालन के कौशलों को बढ़ावा मिले। स्कूल व समुदाय को चाहिए कि वे बाल उत्पीड़न व उपेक्षा के बारे में जनता में जागरूकता बढ़ाने के लिए एक–दूसरे के साथ सहयोगपूर्ण तरीके से काम करें। इन जागरूकता अभियानों का उद्देश्य समुदाय को यह समझाना होना चाहिए कि बच्चों के साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार सभी की समस्या है और इसकी रोकथाम सभी की जिम्मेदारी है।

नेल्सन मंडेला के शब्दों में,"सलामती और सुरक्षा यूँ ही नहीं हो जाती। वे सामूहिक आम सहमति और सार्वजनिक निवेश के परिणाम हैं। हमें अपने बच्चों को, जो हमारे समाज के सबसे असुरक्षित नागरिक हैं, हिंसा और भय से मुक्त जीवन देना है।"

References

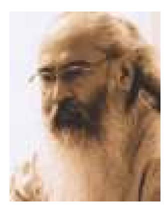
- Ministry of Women Development, Government of India 2007. Study on Child Abuse India 2007. Available from http://wcd.nic.in/childabuse.pdf
- TULIR,Doesn't every child count ? Prevalence and dynamics of child sexual abuse disclosed among schoolgoing children in Chennai, February 2006. Available at http://www.tulir.org/images/pdf/Research%20report1.pdf
- Finkelhor, D. (1986). A sourcebook on child sexual abuse.Newbury Park, CA: Sage; Daro, D. (1988). Confronting childabuse: Research for effective program design. New York, NY: FreePress.
- Finkelhor, David, and Jennifer Dziuba-Leatherman. "Victimization prevention programs: A national survey of children's exposure and reactions." Child Abuse & Neglect 19.2 (1995): 129-139.
- Finkelhor, D., Asdigian, N. and Dzuiba-Leatherman, J. (1995). The effectiveness of victimisation prevention instruction: an evaluation of children's responses to actual threats and assaults. Child Abuse and Neglect, 19 (2), 142-153.
- Srikala, Bharath, and Kumar KV Kishore. "Empowering adolescents with life skills education in schools–School mental health program: Does it work?." Indian Journal of Psychiatry 52.4 (2010): 344.n and Child Development, Government of India 2007. Study on Child Abuse India 2007. Available from http://wcd.nic.in/childabuse.pdf



सौम्या भास्करन एक मनोचिकित्सक हैं जो NIMHANS बेंगलूरु में बाल एवं किशोर मनःचिकित्सा के क्षेत्र में डॉक्टरेट ऑफ मेडिसिन का कोर्स कर रही हैं। उनसे bsowmya1984@hotmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवादः नलिनी रावल

डॉ. शेखर शेषाद्रि नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ मेण्टल हेल्थ एण्ड न्यूरो साइंसेज (NIMHANS) बेंगलूरु, के बाल एवं किशोर मनोरोग विभाग में प्रोफेसर हैं। उनसे shekhar@nimhans.kar.nic.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।



'पहुँच' के बारे में एक अलग सोच

सुमन भट्टाचारजी



मुझे वह पल भलीभाँति याद है जब मुझे इस बात का एहसास हुआ कि मैं पढ़ सकती हूँ। तब शायद मैं पाँच बरस की रही होऊँगी। मैं घर पर थी, कहानी की एक किताब हाथ में लिए जमीन पर बैठी थी और एक कहानी को एक–एक शब्द करके पढ़ने की कोशिश कर रही थी। अचानक (कम से कम मुझे तो यही याद है)–मैं शुरू से आखिर तक बिना रुके पूरा वाक्य पढ़ने लगी थी। मैं पढ़ सकती थी! फिर कई वर्षों तक न तो मैंने इस अद्भुत पल के बारे में सोचा और न ही उससे सम्बन्धित बातों के महत्त्व को। जाहिर है, यह सालों पहले शुरू की गई प्रक्रिया का परिणाम था। मेरी माँ रोज सोते समय हमें कहानियाँ पढ़कर सुनाया करती थीं। मैं हमेशा कहानियों की किताबों से घिरी रहती थी। मेरे पिता एक पत्रकार थे और हमारे घर में ढेर सारी छपी हुई सामग्री रखी रहती थी। इन सामग्रियों का होना हमारे घर में एक बुनियादी और सामान्य–सी बात थी जो घर की संरचना में रची–बसी थी। लेकिन यह बात भारत के कुछ ही बच्चों के लिए सही है।

2012 में शिक्षा की वार्षिक स्थिति की रिपोर्ट बनाने के लिए वालिंटियरों ने भारत के 585 जिलों में से 567 जिलों के 3.3 लाख से अधिक घरों का दौरा किया। इनमें हर तरह के घर–बार शामिल थे–कुछ अधिक समृद्ध तो कुछ कम; कुछ में बच्चे थे तो कुछ में नहीं; कुछ में सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे थे तो कुछ में निजी स्कूलों में। ASER 2012 ने पाया कि देश भर में औसतन प्रति दस हजार घरों में से सिर्फ दो घरों में पाठ्यपुस्तकों के अलावा किसी और प्रकार की छपी हुई सामग्री उपलब्ध थी। 2009–11 में ASER Centre द्वारा किया गया पाँच राज्यों के 30,000 विद्यार्थियों का एक अन्य अध्ययन "प्राइमरी स्कूल के भीतर" यह सुझाता है कि ग्रामीण भारत में सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे ऐसे परिवारों से आते हैं जो साक्षरता सामग्री की उपलब्धता के मामले में और भी गरीब हैं।

अब मैं अपने पढ़ना सीखने वाले अद्भुत पल वाली कहानी पर लौटूँ तो मुझे याद आता है कि उसके एकदम बाद जो हुआ वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण था। मुझे याद है कि मैं बड़े उत्साह के साथ दौड़ती हुई अपनी माँ के पास गई और उन्हें बताया कि मैं पढ़ सकती हूँ.... मैं पढ़ सकती हूँ! मेरी माँ बहुत खुश हुईं और उनकी प्रतिक्रिया ने इस बात की पुष्टि और मेरे इस विश्वास को मजबूत किया कि मैंने कोई महत्त्वपूर्ण चीज हासिल की थी। मेरे भाई की प्रतिक्रिया ने भी बिलकुल अलग तरीके से यह एहसास दिलाया। वह मुझसे तीन साल बड़ा था और मेरी उपलब्धि से अधिक प्रभावित नहीं हुआ – अच्छा, तो मुझे पढ़ना आ गया है, लेकिन इससे क्या। आठ वर्षीय एक बालक के रूप में उसका नजरिया यह था कि पढ़ना सीख लेना तो रोजमर्रा के जीवन का एक सामान्य, साधारण हिस्सा था। मेरे लिए उसकी प्रतिक्रिया इस रूप में महत्त्वपूर्ण थी कि मुझे लगा कि मैं अब उन बच्चों को पीछे छोड़ आई हूँ जो पढ़ नहीं सकते और बड़े बच्चों की श्रेणी में शामिल हो गई हूँ। तो प्रश्न उठता है कि स्कूल तक पहुँचने और पाँच वर्षीय बच्चे के घरेलू जीवन में क्या सम्बन्ध है?

भारत (और दुनिया के अन्य स्थानों) में हमने पहुँच के बारे में बहुत सोचा है। हम प्रायः इन बातों के बारे में सोचते हैं जैसे निकटतम स्कूल की दूरी क्या है? अगर वह दूर है तो क्या घर से स्कूल के लिए कोई सवारी /वाहन उपलब्ध है? क्या स्कूल का रास्ता छोटे बच्चों, लड़कियों के लिए सुरक्षित है? क्या स्कूल में ढालू रास्ता या रैंप है? दूसरे शब्दों में, हम आमतौर पर घर और स्कूल की भौतिक दूरी को पाटने के लिए बच्चों को सक्षम करने के मामले में "पहुँच" के बारे में सोचते हैं।

लेकिन अधिगम के लिए पहुँच इससे कहीं अधिक कठिन है। इसमें सन्देह नहीं कि बच्चे स्कूल के अन्दर और बाहर दोनों स्थानों में सीखते हैं। लेकिन बहुत से बच्चों के लिए स्कूल के पाठ्यक्रम की औपचारिक, शैक्षिक सामग्री उनके स्कूल की चारदीवारी के बाहर के अनुभव से बहुत दूर की बात है। ग्रामीण भारत में सर्वत्र ASER के आँकड़े यह बताते हैं कि आज स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों में से 60 प्रतिशत बच्चों की माताएँ ऐसी हैं जो खुद स्कूल नहीं गई हैं। उनके घरों में छपी हुई सामग्री अगर है भी तो बहुत कम है, वे अपने बच्चों को सोते समय कहानियाँ पढ़कर नहीं सुना सकतीं, उन्होंने कभी स्कूल के किसी शिक्षक से बात नहीं की होगी, और शायद उन्हें यह नहीं पता कि बच्चे की भाषा के विकास के लिए कहानियाँ सुनाना भी महत्त्वपूर्ण है।

अब पहुँच के बारे में अलग ढंग से सोचने का समय आ गया है और यह भी समझना होगा कि कई बच्चों के लिए घर एवं स्कूल के बीच की दूरी को तय करना केवल एक भौतिक यात्रा से कहीं अधिक है। और स्कूल का जो वातावरण इस अन्तर को पाटने में मदद करे, वही अधिगम को सक्षम बनाता है खास करके शुरुआती कक्षाओं में। सिर्फ एक इमारत या सड़क निर्माण की तुलना में इस प्रकार का पुल बनाना कहीं अधिक जटिल है क्योंकि यहाँ इस बात को समझने की जरूरत है कि आज बच्चे कहाँ हैं और पनपने में उनकी इस तरह से मदद करनी है जो न तो आसानी से दिखाई देते हैं और न ही मापनीय हैं।

इस प्रकार के पुल मुहैया कराने में हमारे स्कूल कितने कारगर हैं? उपलब्ध साक्ष्य हमें बताते हैं कि हमें इस दिशा में एक लम्बा रास्ता तय करना है। यहाँ तीन उदाहरण प्रस्तुत हैं। पहला उदाहरण शिक्षण की भाषा का है। कई बच्चे, खास करके ऐसे बच्चे जो सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों के हैं, अलग भाषायी पृष्ठभूमि के होते हैं (बोली, शब्दावली व वाक्य रचना की दृष्टि से)। ऐसे बच्चों को कई पुल पार करने की जरूरत होती है। वे न केवल स्कूल आते हैं (और स्कूल आना उनके और उनके परिवार के लिए एक नई बात है), बल्कि उन्हें अकसर एकदम नई भाषा भी सीखनी पड़ती है ताकि वे अपनी इस स्कूली दुनिया में बस सकें। छोटे बच्चे के लिए स्कूल एक औपचारिक स्थान है, जहाँ समय के प्रयोग एवं लोगों के साथ बातचीत करने को लेकर नियम हैं। ये नियम व व्यवहार उनके घर एवं समुदाय के नियमों व व्यवहारों से अलग होते हैं। इसी प्रकार यहाँ एक औपचारिक "स्कूली" भाषा और अभिव्यक्ति की एक शैली है जो स्कूल के बाहर बच्चे की भाषा से अलग है। प्राथमिक स्कूल के भीतर–इस

अध्ययन से पता लगा कि जहाँ घर और स्कूल की भाषा एक हो वहाँ इस बात की सम्भावना अधिक थी कि बच्चे नियमित रूप से स्कूल आएँ और भाषा व गणित विषय के सरल आकलन में बेहतर प्रदर्शन करें। बच्चों को स्कूल का ऐसा वातावरण कम अनजाना लगता है और इसलिए वह अधिक सक्षम भी हो जाता है।

दूसरा उदाहरण पढ़ाए जाने वाली सामग्री से सम्बन्धित है। स्कूल में जो काम बच्चों को सबसे पहले करने को दिए जाते हैं उनमें से एक है भाषा के बुनियादी अंगों में महारत हासिल करना। स्कूल के अपने पहले वर्ष यानि पहली कक्षा में उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे अक्षर, सरल शब्द एवं लघु वाक्य पढ़ना व लिखना सीखें। यह कोई असम्भव काम नहीं है बशर्ते कि हम सिखाने के तरीकों और सामग्रियों को सावधानी से तैयार करें ताकि हम बच्चों को, आज वे जहाँ हैं, वहाँ से उस मुकाम तक ले जा सकें जहाँ हम स्कूली वर्ष के अन्त में उन्हें देखना चाहते हैं। लेकिन भारत के प्रत्येक राज्य में पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें बच्चों के लिए काफी कठिन हैं। उदाहरण के लिए ASER 2012 में, राष्ट्रीय स्तर पर, ग्रामीण भारत में कक्षा एक के दस बच्चों में से चार बच्चे वर्णमाला के अक्षरों को नहीं पहचान पाते, शब्दों व वाक्यों को पढ़ना तो दूर की बात है। लेकिन कक्षा एक की पाठ्यपुस्तकें भी बच्चों से यह अपेक्षा करती हैं कि वे पढ़ सकें और पाठ पर आधारित गतिविधियाँ कर सकें जो और भी कठिन हैं(चित्र एक)। एक तो वैसे ही अधिकांश बच्चे पहली कक्षा की इस

अक्षर

ल प
स
क र
ट

4 out of every 10 students in Std 1 and 2 out of every 10 in Std 2 were unable to identify letters (ASER 2012)

Extract from the Std 1 language textbook in Rajasthan

दीवाली आई। घरों और बाज़ारों में सफाई होने लगी।
राधा के घर में भी पुताई हुई। माँ ने घर की सफाई की।
राधा और मोहन ने काम में मदद की। आँगन में रंगोली बनाई।
सामान जमाया। सबने मिलकर घर सजाया।
पिताजी बाज़ार गए। नए कपड़े लाए।
पटाखे लाए। मोहन और राधा बहुत खुश हुए।

चित्र 1
बच्चे का पढ़ना : अपेक्षाएँ एवं वास्तविकता

सामग्री में महारत हासिल नहीं कर पाते, ऊपर से कक्षा दो की पाठ्यपुस्तक और भी अधिक कठिन होती है और हर अगली कक्षा में यही होता है। अधिगम को सक्षम बनाने के लिए पुल उपलब्ध कराने की बजाए हमारे स्कूल के पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें बड़े व्यवस्थित रूप से बच्चों को पीछे... और पीछे छोड़ती जाती हैं।

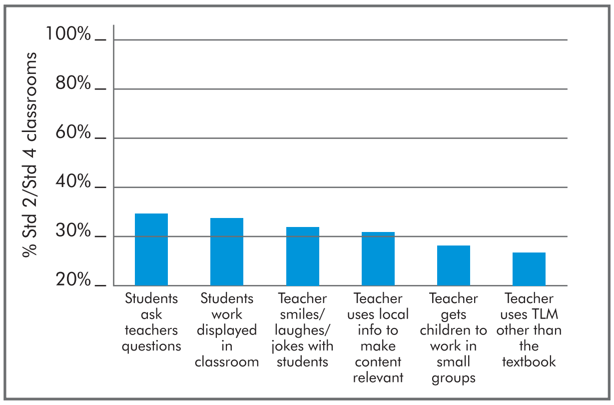
तीसरा उदाहरण बच्चों के अधिगम के लिए "बाल–स्नेही" वातावरण मुहैया कराने से सम्बन्धित है जिससे बच्चे स्कूल में अपने को आश्वस्त, सुरक्षित और सम्मानित महसूस करें। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) एवं बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) – दोनों ही बच्चों की धारण क्षमता और अधिगम के लिए अधिगम के बाल–स्नेही वातावरण के महत्त्व पर जोर देते हैं। लेकिन मापन पैमाने पर इस बात के बहुत कम सबूत हैं कि वास्तव में भारत में हमारी कक्षाएँ कितनी बाल–स्नेही हैं।

प्राथमिक स्कूल के भीतर–इस अध्ययन ने कक्षा में "बाल स्नेहक" वातावरण के छह बहुत साधारण संकेतकों का उपयोग किया और यह देखने का प्रयास किया कि क्या ये संकेतक पाँच प्रमुख राज्यों के 900 स्कूलों के 1,700 से अधिक प्राथमिक स्कूल की कक्षाओं में मौजूद हैं या नहीं। इन संकेतकों ने प्रत्येक कक्षा के "बाल स्नेहक" वातावरण के कई विभिन्न पहलुओं की बुनियादी झलक प्रस्तुत करने की कोशिश की:

- क्या शिक्षक को कम से कम कुछ विद्यार्थियों के साथ मुस्कुराते हुए, हँसते हुए या मजाक करते हुए पाया गया?
- क्या कम से कम एक विद्यार्थी ने विषय–सामग्री से सम्बन्धित सवाल पूछा?
- क्या बच्चों के काम को कक्षा में प्रदर्शित किया गया था?
- क्या शिक्षक ने शैक्षिक सामग्री को प्रासंगिक बनाने के लिए स्थानीय जानकारी का उपयोग किया?
- क्या शिक्षक ने पाठ्यपुस्तक के अलावा किसी और शिक्षण–अधिगम–सामग्री का उपयोग किया?
- क्या शिक्षक ने बच्चों से छोटे समूहों में या जोड़ों में काम करने को कहा?

1,700 से अधिक कक्षा अवलोकनों से पता चलता है कि नीति में बताई गई बातों और कक्षा में वास्तव में जो कुछ होता है, उनमें बहुत अधिक अन्तर है। 10 में से चार कक्षाओं में इनमें से एक भी संकेतक नहीं पाया गया। इसके विपरीत, 10 में से एक से भी कम कक्षा में इनमें से चार या अधिक संकेतक देखे गए। अवलोकित कक्षाओं के 30 प्रतिशत से अधिक कक्षाओं में इनमें से एक संकेतक भी नहीं पाया गया। (चित्र 2)

प्रभावी शिक्षण एवं निरन्तर अधिगम के लिए जिस प्रकार के समर्थन की आवश्यकता है, उसके लिहाज से नीति एवं



चित्र 2
'बाल स्नेही' कक्षाएँ

व्यवहार के बीच स्पष्ट रूप से एक बड़ा अन्तर नजर आता है। भारत में दार्शनिक, संज्ञानात्मक एवं शिक्षण शास्त्र सम्बन्धी आधार की चर्चाओं पर बहुत ध्यान दिया जाता है जैसे कि बच्चों को कैसे पढ़ाया जाए और बच्चे कैसे सीखते हैं आदि। लेकिन जिस प्रकार से स्कूल की भौतिक पहुँच को सुनिश्चित करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि बच्चे कहाँ रहते हैं, ठीक उसी प्रकार अधिगम की पहुँच को सुनिश्चित करने के लिए यह जानना जरूरी है कि आज बच्चे कहाँ हैं–वे क्या जानते हैं, वे क्या सोचते हैं और वे क्या कर सकते हैं।

मैं अकसर लोगों से यह पूछती हूँ कि क्या उन्हें याद है कि उन्होंने पढ़ना कब सीखा। कुछ लोगों को याद है। यह एक ऐसा कौशल है जिसे हमने बिना प्रमाण के ही मान लिया है कि पढ़ना तो बस आ जाता है। इस लेख को पढ़ने वाले दूसरे लोगों की तरह ही, जब मैंने एक बार पढ़ना सीख लिया तो मेरा और छपी हुई सामग्री का रिश्ता कभी खत्म नहीं हुआ। सभी बच्चों को समान अवसर उपलब्ध कराने के द्वारा "अधिगम हेतु सक्षम वातावरण" की शुरुआत होनी चाहिए।

References

- ASER Centre. Annual Status of Education Report (Rural) 2012. New Delhi: ASER Centre
- Bhattacharjea, S, W Wadhwa and R Banerji (2011). Inside Primary Schools: A study of teaching and learning in rural India. New Delhi: ASER Centre
- Ministry of Law and Justice, Government of India. The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009
- National Council for Educational Research and Training (2005). National Curriculum Framework. New Delhi: NCERT



सुमन भट्टाचारजी ASER केन्द्र, नई दिल्ली में अनुसन्धान निदेशक हैं। वे एक सॉफ्टवेयर डेवलपर, हाईस्कूल शिक्षिका, शिक्षा विशेषज्ञ एवं शोधकर्ता के रूप में काम कर चुकी हैं। उन्हें शिक्षा, लिंग एवं नारी–अधिकार के क्षेत्र में काम करने का व्यापक अनुभव है तथा उन्होंने भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, पाकिस्तान और मैक्सिको सहित कई देशों में सरकारी, निजी, गैर सरकारी व अन्तर–राष्ट्रीय संगठनों में काम किया है। उन्होंने रिसर्च डिजाइन, लिंग व शिक्षा सम्बन्धी कोर्सों को पढ़ाया है और इन क्षेत्रों में अनेक लेखों व पुस्तकों का लेखन या सहलेखन किया है। सुमन ने दिल्ली विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में ऑनर्स के साथ स्नातक की उपाधि पाई और हार्वर्ड विश्वविद्यालय से शिक्षा में स्नातकोत्तर एवं डॉक्टरेट की उपाधि पाई। उनसे sbhattacharjea@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** नलिनी रावल

वातावरण निर्माण बनाम
सिस्टम डिजाइन और जादुई सीख

सौमिल मजूमदार

पिछले 4 साल से मैं शिक्षा के विभिन्न सम्मेलनों और मीडिया में अलग–अलग शिक्षाविदों, स्कूल नेतृत्व से जुड़े लोगों, शिक्षकों और नीति– निर्माताओं को स्कूली शिक्षा की विशाल चुनौतियों पर बात करते हुए सुनता आया हूँ। मैंने पाया है कि कुछ मुद्दे बार–बार उभरकर आते हैं, जैसे –

1. सीखने–सिखाने पर ध्यान दिया जाए न कि शिक्षण पर।
2. सीखने में आनन्द पैदा किया जाए तो बच्चे जीवन भर के लिए सीख लेंगे।

लगता है कि सबसे बड़ी चुनौती सीखने के लिए ऐसे बेहतर वातावरण बनाने की है, जिनमें बच्चे पूरी तरह सम्बद्ध रहें और वे सीखने के प्रति प्रेम विकसित कर पाएँ।

एक इंजीनियर के तौर पर जब किसी समस्या का सामना करना पड़ता है तो ध्यान आमतौर पर डिजाइन पर रहता है – फिर वह चाहे कुछ नया निर्मित करने की बात हो या मौजूदा असबाब के साथ छेड़छाड़ की बात।

कुछ बदलना है तो कुछ नया करने की कोशिश करें। आइंस्टाइन ने पागलपन को परिभाषित करते हुए कहा था कि इसमें "एक ही बात को बार–बार किया जाता है और हर बार अलग निष्कर्ष की आशा की जाती है।" क्या स्कूल नेतृत्व के हमारे अधिकतर लोग अस्थाई पागलपन की अवस्था में रहते हैं? यानी वही बातें दोहराते हुए नए निष्कर्षों की आशा रखते हैं?

वातावरण को प्रभावित करना है तो सम्बद्ध व्यक्तियों के साथ–साथ डिजाइन/सिस्टम डिजाइन से सम्बन्धित उनके सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए कोई नया दृष्टिकोण आजमाना होगा।

और जब सब "वैज्ञानिक" दृष्टिकोण असफल हो जाएँ तथा समस्या बहुत गम्भीर हो, तो जादू का रुख करें! स्कूलों में सीखने का बेहतर माहौल बनाने में इस अनसुलझ समस्या को सुलझाने के लिए शायद समय आ गया है कि सिस्टम डिजाइन को जादू के साथ सम्बद्ध किया जाए।

मैं समझाता हूँ। मुझे लगता है कि स्कूलों में सीखने के लिए एक बेहतर वातावरण बनाने के बारे में गहरी चिन्ता में लिप्त अधिकतर माता–पिता, शिक्षाविद, स्कूल नेतृत्व के लोग तथा अन्य विशेषज्ञ इस सरल–सी बात को अनदेखा कर रहे हैं कि –

एक व्यवस्था का सबसे बेहतर प्रयोग तब होता है जब आप उसे उसी बात के लिए प्रयोग करें जिसके लिए वह बनाई गई थी।

और बच्चे खेल के माध्यम से सीखने के लिए बने हैं।

जीवों की सभी प्रजातियों में छोटे बच्चे खेल के माध्यम से ही सीखते हैं। वे अपने वातावरण, अपने समकक्षों, अपने से बड़ों और छोटों के बारे में सीखते हैं। किससे चोट पहुँचती है और किससे नहीं, किससे काम बनता है और किससे नहीं – यह भी सीखते हैं।

यह बात मानव पर भी लागू होती है। कुछ महीनों के लिए मानव बच्चा "खेलता है" – माँ के साथ, भाई–बहनों के साथ, खिलौनों के साथ – और सीखता है। सीखता है कि किस तरह उसकी मुस्कुराहट से सकारात्मक प्रतिक्रिया मिलती है, किस तरह उसके रोने से उस पर ध्यान दिया जाता है, किस तरह आकृतियाँ खाली स्थानों में फिट हो जाती हैं, कैसे एक बटन के दबाने से संगीत पैदा होता है, किस तरह बाँह को हिलाकर गेंद को नीचे फेंका जाता है तो वह उछलती है।

खेल के माध्यम से बच्चे सीखते हैं।
'खेल' से हमारा तात्पर्य है कुछ भी इसलिए करना कि वह



दिलचस्प लगता है, अलग–अलग कुछ आजमाना, देखना कि क्या चल सकता है और क्या नहीं, उसे कई बार करना और हर बार कुछ नया सीखना – और यह सब करते हुए आनन्द उठाना।

दूसरी ओर खेलकूद या क्रीड़ा को हम खेल का कोई एक व्यवस्थित, सुपरिभाषित रूप कह सकते हैं। सब बच्चों को यह अच्छा लगता है, क्योंकि इसमें खेल रहता है। हमारे परामर्शदाता डॉ. ज्यॉर्ज सेलेक कहते हैं, "खेल बच्चों द्वारा किया गया एक वैज्ञानिक प्रयोग है।"

सब माँ–बाप और स्कूल का नेतृत्व करने वाले जानते हैं कि बच्चों को खेलना अच्छा लगता है। उन्हें विकल्प दिया जाए तो वे अँग्रेजी या गणित पढ़ने की बजाए खेलना चाहेंगे।

यानी बच्चे का 'तन्त्र' खेल के लिए ही बना है। शिक्षा का 'तन्त्र' क्या निर्मित करना चाहता है? – सीखने के बेहतर वातावरण।

शिक्षा का मौजूदा तन्त्र क्या करने के लिए बना है? सब बच्चों को एक संगत अकादमिक अनुभव प्रदान करने के लिए, परिणामों को मापने और प्रगति पर नजर रखने के लिए।

यदि हम शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था की बनावट पर प्रभाव डालने की कोशिश करें, बच्चों से सम्बन्धित उद्देश्यों को समझें और खेल के जादू को बीच में लाएँ तो हमें कुछ लाभदायक उत्तर मिल सकते हैं।

जादू? कैसा जादू?

बच्चे एक गेंद को इधर–उधर ठोकर मारते हैं, खेल के मैदान में दौड़ते हैं, बहुत कुछ नया परखते हैं, नए दोस्तों को मिलते हैं, और आपको टीम के बेहतर खिलाड़ी मिल जाते हैं – ऐसे बच्चे जो मेहनत और अनुशासन का मूल्य समझते हैं, जो अधिक केन्द्रित हैं और नियमों का आदर करते हैं, हदों को समझते हैं, जो शारीरिक और सामाजिक तौर पर अधिक स्वस्थ हैं।

यह सब केवल खेलने मात्र से हो जाता है! कोई भाषण नहीं, शिक्षक नहीं, कक्षाएँ नहीं। जादू !

पिछले 10 सालों में मैंने बच्चों को इस जादू के सम्मोहन में देखा है। बच्चों ही नहीं माता–पिता, शिक्षकों, स्कूल नेतृत्व के लोगों और शिक्षाविदों को भी।

इसलिए सीखने के सबसे बेहतरीन वातावरण वे होंगे जो सीखने–सिखाने की प्रक्रिया की बुनावट में खेल के जादू को शामिल कर लें। खेल का अर्थ क्रीड़ा नहीं है। लेकिन खेल के मैदान से बहुमूल्य सबक मिल सकते हैं।

बच्चे विज्ञान के साथ 'खेल' सकते हैं। वे नए प्रयोग कर सकते हैं, देख सकते हैं कि क्या कैसे काम करता है, कोई नया तत्व डाले जाने पर क्या प्रतिक्रिया होती है।

बच्चे भूगोल से 'खेल' सकते हैं। इतिहास से, गणित से भी 'खेल' सकते हैं।

यह समझने के लिए कि खेल के माध्यम से सीखने के लिए एक बेहतर माहौल कैसे बनाया जाए, 'खेल के 10 नियमों' को समझना आवश्यक है। ये नियम मैंने बच्चों को खेलते हुए देखने के अपने अनुभव और पिछले 10 सालों में इस कोशिश के आधार पर बनाए हैं कि 2,00,000 बच्चों को और अधिक खेलने के लिए प्रेरित किया जा सके।

खेल की सार्वभौमिक बुनियाद है कि आप मौज–मस्ती के लिए खेलते हैं।

मौज का अर्थ यह नहीं है कि बच्चों को हर समय हँसना होगा। डॉ. सेलेक के सुन्दर तरीके से अभिव्यक्त विचार के मुताबिक मौज–मस्ती का अर्थ है कि

1. बच्चे बहुत गहराई से गतिविधि में व्यस्त हों।
2. वे अपने आसपास के समूह के साथ जुड़े हों।
3. उन्हें अपनी सीमाओं से थोड़ा आगे तक धकेला जाए।

खेल का पहला नियम : जो भी आपके पास है, उसी से खेलें। बच्चे सीमाओं में रहते हुए काम करने को तैयार रहते हैं। वे नवाचारी होते हैं।

छोटा कमरा? कोई समस्या नहीं। सीमित समय? समस्या नहीं। साझा संसाधन? समस्या नहीं। जब तक कि वे खेल सकते हैं और मौज में रह सकते हैं, तब तक कोई समस्या नहीं।

दूसरा नियम : आप खेल चुनें, आप ही नियम बनाएँ ।

खेलते–खेलते ही बच्चे नियम भी बना लेते हैं और ये वातावरण के हिसाब से अनुकूलित होते हैं। जैसे, किसी क्रोधी पड़ोसी की खिड़की को गेंद लगने का अर्थ माना जाएगा कि आप खेल से बाहर हो गए।

आवश्यकता पड़े तो खेल को बदल दो। नियमों को बदलकर नए खिलाड़ी, नई सीमाएँ तय कर सकते हैं।

इस बात में न उलझें कि कुछ कैसे किया जाना अपेक्षित था। शिक्षण के लिए नए दृष्टिकोण भी तलाशें।

उद्देश्य यह नहीं है कि कुछ "सही ढंग" से होना चाहिए। उद्देश्य तो है खेलने का, सीखने का और इस प्रक्रिया में आनन्द लेने का।

तीसरा नियम : जितना अधिक खेलेंगे, उतना ही कम थकेंगे ।

यदि सच में खेल हो रहा हो तो बच्चे बहुत लम्बे समय तक के लिए एकाग्र रह सकते हैं। वे थकते नहीं हैं। उन्हें भूख का एहसास भी नहीं होता, न ही शौचालय जाने की आवश्यकता महसूस होती है। वे खेलते रहते हैं – और सीखते रहते हैं।

क्या आप चाहते हैं कि बच्चे कक्षा में व्यस्त रहें? उन्हें सीखते–सीखते 'खेलने' में लगा दें।

चौथा नियम : जितना अधिक 'बहता' खेल होगा, उतना ही कम कप्तान का महत्त्व ।

फुटबॉल और बास्केटबॉल जैसे खेलों में खेल के दौरान किसी 'कप्तान' या 'नेता' की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रहती। बल्कि स्थिति में से ही कप्तान निकलता है। औपचारिक कप्तान की आवश्यकता क्रिकेट जैसे व्यवस्थित खेलों में रहती है।

शिक्षक कक्षा का नेतृत्व करने की बजाए उसे प्रेरित करने का काम कर सकता है। टीम को सही दिशा में ले जाने का, सीखने–सिखाने को स्कूल के सन्दर्भ और पृष्ठभूमि के साथ जोड़ते हुए और सब बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में शामिल करते हुए काम कर सकता है।

पाँचवाँ नियम : चोट के अधिक निशान = अधिक आनन्द = अधिक सीखना ।

चोटों के निशान इस बात का सबूत हैं कि पूरी कोशिश की गई, जोखिम उठाया गया और आरामदायक अवस्था से आगे जाकर कुछ किया गया।

गलती करना सीखने की प्रक्रिया का ही एक हिस्सा है। बच्चों को "गिरने" दें। यही सीखने का तरीका भी है।

छठा नियम : अधिक खेलेंगे, अधिक जीतेंगे ।

बच्चा विषयवस्तु के साथ खेलता है तो उस क्षण तक पहुँचने की गुंजाइश भी बढ़ती है जब वह कह उठे – "अहा!" और यह जीत देर तक रहने वाली और अन्तर्निहित भी होगी।

सातवाँ नियम : बस एक बड़ी जीत चाहिए ।

एक बार का बड़ा क्षण जिसमें कुछ पाने का आभास हो, और बच्चा "अहा!" कह उठे, तो समझें कि उसने किसी अवधारणा को उम्र भर के लिए समझ लिया है।

आठवाँ नियम : अपने आदर्श इन्सानों का आदर करें, उनकी नकल न करें।

बच्चे अपने शिक्षकों, समकक्षों और "हीरो" या आदर्श व्यक्तियों से सीखते हैं। मगर प्रत्येक बच्चे की वैयक्तिकता भी होती है, स्वयं का अलग व्यक्तित्व भी होता है, जिसे सहारा मिलना चाहिए। बच्चों को यह देखने में मदद करें कि उनके "हीरो" क्या करते हैं। उनके व्यवहार के बेहतरीन तत्वों को बच्चों की शैली में एकीकृत करें।

नौवाँ नियम : कुशलता के लिए अभ्यास चाहिए, ढेरों अभ्यास।

खेलकूद शायद खेल और जीवन के इस बुनियादी नियम के लिए सबसे बेहतर शिक्षक है।

सब बच्चे समझते हैं कि अभ्यास के बिना उनमें बेहतरी नहीं आ सकती। और उनके मित्र इसलिए बेहतरी की ओर बढ़ रहे हैं क्योंकि वे अभ्यास करते हैं, नियमित और ढेरों अभ्यास।

उन्हें नियमित तौर पर खेलने के लिए प्रेरित करें तो वे कठिन परिश्रम और अनुशासन के मूल्य को जानें–समझेंगे।

दसवाँ नियम : खेल कभी समाप्त नहीं होता।

बच्चा चाहता है कि हमेशा खेलता ही रहे। देर बहुत हो चुकी हो तो अगले दिन जारी रखें। बारिश हो रही हो (और उन्हें बारिश में खेलने की अनुमति न देनी हो!) तो उसके बन्द होने की प्रतीक्षा करें।

खेल कभी समाप्त नहीं होता। और खेलने का आनन्द और उससे सीखना भी कभी समाप्त नहीं होता।

यदि हम बच्चों को स्कूल में खेलने के आनन्द का अनुभव करवा पाएँ तो वे जीवन भर के लिए खेल तलाश लेंगे। वे ऐसे मित्रों को तलाश लेंगे जो खेल के लिए उनके जोश और भावना, और नया कुछ टटोलने और सीखने के लिए उनके साझीदार बनें।

वे मौज–मस्ती के लिए, सीखने के लिए और जीवन भर सीखते रहने के लिए मौके तलाशते रहेंगे।

एक कहावत है – किसी को एक मछली दे दो तो तुम उसे एक दिन का भोजन दे रहे होगे। उसे मछली पकड़ना सिखा दो तो आप उसके लिए उम्र भर भोजन का प्रबन्ध कर देंगे। स्कूलों में सीखने के वातावरण के सन्दर्भ में इस कहावत को कुछ इस तरह बदल कर देखना चाहिए –

बच्चे को एक सबक दोगे तो तुम उसे एक दिन के लिए पढ़ाओगे। उसे खेलना सिखा दोगे तो जीवन भर के लिए सिखा दोगे।

खेल और शारीरिक गतिविधि के लाभ सब शिक्षाविदों को अच्छे से मालूम हैं।

सेहतमन्द बच्चे, शारीरिक और सामाजिक तौर पर सेहतमन्द बच्चे।
बेहतर अनुशासन।
बेहतर एकाग्रता।
बेहतर टीमवर्क।
आदि आदि।

पिछले 4 सालों में हम "कक्षाओं के कमरों को खेल के मैदान तक विस्तार" देने के प्रयास करते रहे हैं। इसके लिए हमने खेलकूद के अनुभव में एक व्यवस्थित समावेशी दृष्टिकोण, मूल्यांकन, शिक्षक–प्रशिक्षण और निगरानी के पक्ष लाने की कोशिश की। इस अनुभव से हमें महसूस हुआ कि बहुत कुछ है जो खेल का मैदान भी कक्षा के कमरों को दे सकता है।

सीखने के वातावरण के उद्देश्य और उसके ढाँचे में खेल के इन 10 नियमों को एकीकृत करने से आपको एक ऐसा वातावरण बनाने में मदद मिलेगी जो बच्चे के साथ तालमेल में होगा – और याद रहे कि बच्चा ही शिक्षा का मुख्य पात्र है।

यह तो सही है कि यह दृष्टिकोण नया और कठिन है लेकिन जो शिक्षक खेल को कक्षा में एकीकृत करने में सफल होगा, वह एक ऐसा जादुई वातावरण बना पाएगा जिसमें बच्चे रहना पसन्द करते हैं, जिसमें सब बच्चे सीखते हैं और सीखने से ऐसा आनन्द विकसित करते हैं जो उम्र भर उन के साथ रहेगा।

खेल का आनन्द लो!

सौमिल मजूमदार आई.आई.टी. मुम्बई और आई.आई.एम. बेंगलूरु के छात्र रहे हैं। वे महाराष्ट्र की बैडमिन्टन टीम तथा आई.आई.टी. मुम्बई की फुटबॉल टीम के सदस्य रहे हैं। स्पोर्ट्सविलेज के संस्थापक–निदेशक तथा एजुस्पोर्ट्स के सह–संस्थापक और मुख्य कार्यकारी अधिकारी के तौर पर स्कूली खेलकूद के सन्दर्भ में वे पिछले एक दशक से 1 लाख बच्चों और 50 हजार माता–पिता के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क में रहे हैं। एजुकेशन वर्ल्ड द्वारा भारतीय शिक्षा में बदलाव लाने वाले 50 में से एक अगुआ माने गए सौमिल स्कूलों, संघों, नीति–निर्धारकों और प्रायोजकों के साथ इस उद्देश्य से काम करते रहे हैं कि बच्चों के लिए खेलकूद और शारीरिक गतिविधि के जादू को महसूस कर पाने के लिए अधिक गुणवत्तापूर्ण मौके उपलब्ध हो सकें। उनसे saumil@edusports.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवादः रमणीक मोहन



कक्षा के बाहर सक्षम अधिगम

श्रीपर्णा तम्हाणे

"बच्चा कोई फूलदान नहीं जिसे भर दिया जाए वरन वह तो ऐसी आग है जिसे प्रज्ज्वलित करने की आवश्यता है।" – यह विचार था फ्रेंच पुनर्जागरण विद्वान और लेखक फ्रेंकोइस रबेलेस का। तभी से कई सदियों के अनेक श्रेष्ठ शिक्षाविदों ने यह बात मानी है कि शिक्षा का सही उद्देश्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति हर सम्भव तरीके से पुष्पित हो। तो फिर हम "फूलदान को भरने" में इतना अधिक ध्यान क्यों देते हैं जबकि "प्रज्ज्वलित करने" वाली बात कहीं नजर ही नहीं आती। हमने शिक्षा को केवल जानकारियों का हस्तान्तरण क्यों बनाकर रख दिया है जहाँ व्यक्ति के जीवन का सारा ध्यान सिर्फ परीक्षा के प्रदर्शन पर केन्द्रित किया जाता है?

जैसे एक पौधे को बढ़ने के लिए सही मिट्टी की जरूरत होती है, ठीक वैसे ही बच्चे को खिलने के लिए सही वातावरण की जरूरत होती है। कक्षा हो या घर, बच्चे के लिए सही वातावरण वह होता है जहाँ उसे साँस लेने, खुद को खोजने, आत्मविश्वास हासिल करने एवं अपनी क्षमता को जानने का अवसर मिले। फिर भी हममें से कितने लोग हैं जो ईमानदारी के साथ स्कूल के वातावरण को इस बात का सच्चा श्रेय दे सकते हैं कि उसने हमें आत्मविश्वास, सहानुभूति, स्वतन्त्र रूप से सोचने की क्षमता तथा विवेकपूर्ण चयन जैसी बातों से लैस किया है न कि हममें अपर्याप्तता, विभ्रम, भय तथा असुरक्षा की भावना भर दी है जिसके चलते हम चाहे और कुछ भी बने हों, लेकिन जीवन का सामना कर सकने योग्य, आत्मविश्वासी एवं पूर्ण विकसित वयस्क तो निश्चित रूप से नहीं बने हैं?

हमने कक्षा के वातावरण एवं कक्षा के बाहर अन्तःक्रिया के स्थान–दोनों को नजरअन्दाज किया है तथा बच्चे के व्यक्तित्व को आकार देने में इनके प्रभाव को निहायत कम करके आंका है।

बच्चे के माता–पिता और उनकी देखभाल करने वाले उसके साथ जैसा व्यवहार करते हैं, उसका असर उसकी वृद्धि व विकास पर पड़ता है। प्यार और समर्थन से भरा वातावरण, स्वीकरण एवं प्रशंसा की चिन्ता किए बिना, बच्चों के विकास व स्वाभाविक रूप से सीखने में मदद करता है। इसलिए बच्चे का भावनात्मक वातावरण भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि भौतिक वातावरण। जिस देश को भौतिक वातावरण के लिए अकसर संघर्ष करना पड़ता हो, वहाँ भावनात्मक वातावरण की बात करना दूर की कौड़ी लाने जैसा है। वैसे एक पोषक वातावरण के लिए किसी विशेष बुनियादी ढाँचे की जरूरत नहीं होती, सिवाय बच्चों के साथ काम करने वालों के स्नेह, समझ एवं संवेदनशीलता के।

बच्चे को कक्षा में ही ऐसे लोकतान्त्रिक ढाँचे से परिचित कराया जा सकता है जिसमें हर एक का सम्मान हो और जहाँ सभी बच्चों को एक भय रहित व हर्षपूर्ण वातावरण में अपनी ही गति से सीखने का अवसर दिया जाए। जब बच्चे खुश और मुक्त होते हैं, तब सबसे अच्छी तरह सीखते हैं। यह स्वतन्त्रता मनमानी करने के लिए नहीं बल्कि खोजने, व्याख्या करने और व्यक्त करने के लिए होनी चाहिए। यदि बच्चे को सीखने के पर्याप्त अवसर न दिए जाएँ तो हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि वह विकसित हो पाएगा, खास करके संज्ञानात्मकता के क्षेत्र में। नाटक, संगीत, नृत्य, चित्रकला व क्राफ्ट, मुक्त खेल आदि ऐसे प्रभावी तरीके हैं जिनके माध्यम से विविध अनुभव प्रदान करने से बच्चे को विकसित होने के प्रचुर अवसर प्राप्त होते हैं। बच्चों के भावनात्मक संसार के साथ सामंजस्यता बिठाना भी महत्त्वपूर्ण है। बच्चों के साथ बातचीत करने, टहलने, सहयोगात्मक गतिविधियाँ करने या खेलने के माध्यम से हम उनके साथ गुणावत्तापूर्ण समय बिता सकते

हैं। मुझे एक सरल सी प्रक्रिया याद आ रही है जिसने कक्षा के भीतर हमारे पारस्परिक सम्बन्धों को बेहतर बना दिया था। इसमें हम सब एक गोले में बैठकर कुछ बातें साझा करते थे और हमने इस गतिविधि को "मैड, सैड एण्ड ग्लैड" का नाम दिया। जैसा कि नाम से ही जाहिर है, हम सबको यानि विद्यार्थियों व शिक्षक को ऐसी बातें साझा करनी होती थीं जिन्हें लेकर हम पागल से हैं, दुखी हैं या खुश हैं। पहले तो बच्चे कुछ हिचकिचाए, लेकिन जल्द ही वे एक–दूसरे पर यकीन करने लगे और अपनी खुशियों, दुखों तथा कुण्ठाओं को काफी खुलकर साझा करने लगे। यह कहना आवश्यक नहीं कि इन बातों को व्यक्त करने से एक–दूसरे को बेहतर रूप से समझने में मदद मिली। इससे अकसर हमें चीजों को सुधारने या समाधान खोजने में भी मदद मिली। एक शिक्षक के रूप में मुझे बच्चों की भीतरी दुनिया में झाँकने का सौभाग्य मिला और इससे मुझे उन तक और अधिक प्रभावी तरीके से पहुँचने के प्रयास में भी मदद मिली।

कक्षा के वातावरण की बात तो अकसर की जाती है लेकिन मैं कक्षा के बाहर की जगहों के बारे में ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ। ये ऐसे स्थान हैं जो युवा मन को आकार देते हैं इसलिए इन्हें संवेदनशीलता के साथ सम्भालने की सख्त जरूरत है।

आइए, पहले स्कूल की प्रार्थना सभा के बारे में बात करें। स्कूल में प्रार्थना सभा का आयोजन जिस तरीके से होता है वह उस स्कूल की संस्कृति को प्रतिबिम्बित करता है। यह ऐसा समय है जब पूरा स्कूल एक–दूसरे से मिलता है और इसलिए यहाँ विविध कलाओं के माध्यम से विचारों, चर्चाओं तथा अभिव्यक्तियों को साझा किया जाता है, जिनसे युवा मन को सकारात्मक तरीके से आकार देने के प्रचुर अवसर मिलते हैं ताकि वे प्रबुद्ध, प्रेरित व सक्षम बन सकें। लेकिन हम इस पवित्र स्थान को बच्चों की "प्रतियोगिता" और "प्रदर्शन" का स्थान बना देते हैं बजाए इसके कि वहाँ सही मायनों में साझेदारी और विकास किया जाए। क्या यह स्थान केवल यह जाँचने के लिए है कि बच्चे सीधी पंक्ति में खड़े होते हैं या नहीं, हमेशा साफ–सुथरी व उचित वर्दी में आते हैं या नहीं, जहाँ सिर्फ सबसे सक्षम विद्यार्थियों को ही प्रदर्शन करने का मौका मिलता है या फिर ये ऐसे स्थान भी हैं जहाँ हर बच्चे की सर्वश्रेष्ठ बातों को उजागर किया जाए? मेरे जीवन के सर्वाधिक मार्मिक क्षणों में से एक क्षण वह था जब एक विकलांग बच्ची की मंच पर चढ़ने में सहायता की गई। उसे समाचार प्रस्तुत करना था। वह लड़खड़ाते हुए अटपटे तरीके से माइक के सामने आकर खड़ी हुई। उसकी अस्थिर सी भाषण शैली, जो मुश्किल से सुनाई देती थी, उत्कृष्टता से कोसों दूर थी लेकिन अगर यह अनुभव उसके आत्मविश्वास के निर्माण के लिए उसके पूरे जीवन काल का पाठ था तो छोटे दर्शकों के लिए संवेदना का पाठ भी था।

स्कूलों में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। कितनी ही बार शिक्षकों का ध्यान सही प्रदर्शन पर इतना अधिक होता है कि उस पर उनका विक्षिप्त सा नियन्त्रण बच्चों पर मानसिक रूप से भारी दबाव डालता है। ऐसा इसलिए भी होता है क्योंकि इसे शिक्षक की अपनी क्षमता का प्रतिबिम्ब माना जाता है। कितनी ही बार हमने देखा है कि बच्चे अस्वीकरण के कारण आहत हो जाते हैं, दबाव के कारण तनावग्रस्त हो जाते हैं एवं अभिव्यक्ति करने में प्रतिबन्धित हो जाते हैं क्योंकि उन्हें शायद ही कभी इस बात का अवसर मिलता है कि वे अपने हिसाब से सोचें और बोलें या खुद ही चुनाव करें। स्कूल के बाकी स्थानों की तरह यहाँ भी उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे केवल निर्देशों का पालन करें, खुद पहल न करें क्योंकि यह गलत धारणा बन चुकी है कि अगर यह काम बच्चों पर छोड़ दिया जाए तो वे सिर्फ गड़बड़ी करेंगे। मंच पर प्रदर्शन करने से धीरे–धीरे अवरोधन समाप्त होता है तथा संकोच व अटपटापन दूर होता है। लेकिन दुर्भाग्यवश केवल सर्वश्रेष्ठ बच्चों को ही प्रदर्शन करने का अवसर मिलता है और बाकी लोगों को इस भय के कारण दूर रखा जाता है कि कहीं प्रदर्शन खराब न हो जाए। इस तथ्य को मान्यता नहीं दी जाती कि अगर अपेक्षाकृत कम प्रतिभाशाली बच्चे को मौका दिया जाए तो इससे उसका आत्मविश्वास पूर्ण रूप से और चमत्कारिक ढंग से बढ़ सकता है। सक्षम वातावरण के निर्माण के लिए स्कूल बेहद सकारात्मक कदम उठा सकते हैं और ऐसा करने के लिए उन्हें चाहिए कि वे हर विद्यार्थी को प्रदर्शन का मौका दें। भावना यह होनी चाहिए कि भागीदारी महत्त्वपूर्ण है न कि प्रदर्शन ताकि कुछ चुनिन्दा लोगों का नहीं वरन सभी का लाभ हो।

खेलकूद का स्थान एक और ऐसा स्थान है जहाँ अद्भुत अधिगम होता है, न केवल ध्यान केन्द्रित करने, अभ्यास करने, दृढ़ रहने का एवं टीम भावना का बल्कि स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का भी। हालाँकि यहाँ टीम भावना शब्द का प्रयोग विरोधाभास देता हुआ–सा प्रतीत हो सकता है लेकिन इसके पीछे एक उद्देश्य है। खेल के मैदान में बच्चों को प्रतिस्पर्धा की भावना से दूर रखना असम्भव है, जहाँ जुनून अपनी चरम सीमा पर होता है। फिर भी उन तरीकों

का पता लगाना सम्भव है जिनसे बच्चों को यह सिखाया जाए कि उन्हें जीतने के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करना चाहिए पर शिष्टता से हारना भी आना चाहिए। उन्हें एक योग्य प्रतिद्वन्द्वी की सराहना करना, खेल के लिए खेल की सराहना करना और योग्य खिलाड़ी की किसी पूर्वाग्रह के बिना प्रशंसा करना; ताली बजाना एवं अपने व दूसरों के लिए जश्न मनाना आना चाहिए और इन सबके साथ उन्हें खिलाड़ी–भाव का विकास करना चाहिए जिसके बिना व्यक्ति जीवन में अधूरा रह जाता है। मुझे एक घटना याद आ रही है जो हमेशा मेरे मन में बसी रहेगी। रिले रेस चल रही थी और हर खिलाड़ी अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ने में लगा हुआ था। रेस अपने अन्तिम दौर में पहुँच चुकी थी, एक लड़की सबसे आगे निकल गई थी और यह स्पष्ट था कि वही जीतेगी। तालियों की गड़गड़ाहट के बीच सबने जरा जिज्ञासा के साथ देखा कि वह लड़की समापन रेखा के कुछ दूर पहले ही रुक गई। उसने बाकी तीन बच्चों का इन्तजार किया और फिर चारों एक–दूसरे का हाथ पकड़कर साथ–साथ समापन रेखा तक दौड़े। यह बात खेल के मैदान में बिलकुल अनसुनी थी लेकिन उस रोज उस किशोरी ने खेल के नियमों को इस तरह से बदलकर रख दिया था जैसा पहले कभी नहीं हुआ था!

क्या आपने कभी किसी बच्चे या माता–पिता को माता–पिता व शिक्षकों की मीटिंग के नाम पर घबराते हुए देखा है? ये मीटिंग "स्पष्ट रूप से प्रतिभाशाली" बच्चों के माता–पिता के लिए प्रोत्साहक हो सकती है, लेकिन उनके लिए यह वाकई एक कटु अनुभव है जो अकादमिक रूप से अच्छे नहीं हैं या जो अपना गृहकार्य नहीं करते या जो अपनी चीजें गुमा देते हैं....शिकायतें कई हैं जिन्हें कई अन्य लोगों के सामने बड़ी असंवेदनशीलता के साथ सुनाया जाता है।

मुझे याद आती है एक बच्ची की जो ऐसी ही एक मीटिंग के बाद बुरी तरह से सिसक रही थी क्योंकि जैसा कि पहले से ही पता था, लगभग हर शिक्षक ने उसकी इतनी ज्यादा शिकायत की थी कि वह तंग आ गई थी। मुझे लगता है कि उस दिन वे उसकी आत्म–छवि को नुकसान पहुँचाने में कामयाब रहे थे। समय आ गया है कि जब हम बच्चों के बीच में मौजूद अन्तर और उनकी गोपनीयता का आदर करें और फीडबैक देने में संवेदनशीलता बरतें। माता–पिता व शिक्षकों की मीटिंग भी ऐसा स्थान है जो सक्षमकारी या असक्षमकारी हो सकता है और यह इस बात पर निर्भर करता है कि इसका संचालन कैसे किया जाता है। यदि पहले बच्चे की सर्वश्रेष्ठ बातों को सही मायनों में बाहर लाने की कोशिश की जाए, बिना इस बात को अनदेखा किए कि कहाँ आलोचना की आवश्यकता है, तो यह दुनिया रहने के लिए एक दयालु स्थान बन जाए! आखिरकार, बच्चे की कमियों को इंगित करके नहीं वरन उसकी ताकतों को उजागर करके उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न किया जा सकता है।

श्री अरविन्द के शब्दों में,"मन की शिक्षा की तरह ही हृदय की शिक्षा में भी, सबसे अच्छा तरीका यह है कि बच्चे को अपनी ही पूर्णता के लिए सही मार्ग पर डाला जाए और उसका अनुसरण करने के लिए उसे प्रोत्साहित किया जाए; इसके लिए उस पर नजर रखें, उसे सुझाव दें, सहायता दें लेकिन दखलअन्दाजी न करें।" स्कूल के विभिन्न स्थानों द्वारा जुटाया गया ऐसा वातावरण स्कूल को वाकई हर तरह से सक्षम बना देगा।

श्रीपर्णा तम्हाणे इस लेख के लिखे जाने के समय अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बेंगलूरु, के यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेण्टर में संसाधक के रूप में शिक्षकों के लिए एक वेबसाइट (www.teachersofindia.org) के लिए डिजिटल एवं नॉन–डिजिटल संसाधनों का निर्माण कार्य करती थीं। वे जे.कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन के स्कूलों में 15 वर्षों तक अँग्रेजी व सामाजिक अध्ययन की शिक्षिका रह चुकी हैं। वे पाठ्यचर्या के विकास एवं शिक्षक संवर्धन मॉड्यूल से भी जुड़ी हैं। वे शिक्षकों की सलाहकार हैं और उनके लिए संवर्धन कार्यशालाओं का सुगमीकरण कर चुकी हैं। आजकल वे कोलकाता में रहकर स्वतंत्र रूप से कार्य कर रही हैं। उनसे sriparna.newleaf@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल



क्या यह बस
मिट्टी का एक ढेला है?

ललिता मंजुनाथ

जो स्कूल सीखने–सिखाने का काम रुचिकर माहौल में करना चाहता है, वह हस्तकार्य के लिए समर्पित एक जगह अलग से रख सकता है। एक शिल्प–केन्द्र या स्टूडियो विभिन्न तरह की सामग्री के लिए समृद्ध संसाधन मुहैया करवाने का काम कर सकता है। छोटी उम्र से ही बच्चों को इससे परिचित करवाया जा सकता है।

मिट्टी, बाँस, लकड़ी, नारियल के खोल, बीज की फली तथा कागज, धागा, कपड़ा और मनकों जैसी अन्य मनमोहक सामग्री से बच्चों का परिचय करवाया जा सकता है और वे इनकी प्रकृति और विभिन्न तरह की विशेषताओं को समझने का आनन्द उठा सकते हैं।

एक हस्तकला–केन्द्र मिट्टी को अपने मुख्य माध्यम और साधन के रूप में प्रयोग करते हुए बच्चों के विचारों और कल्पना को बाहर आने का मौका दे सकता है। मिट्टी एक बहुत ही लचीली सामग्री है, एक ऐसा साधन है जिससे बिना किसी विशेष समस्या के कुछ भी बनाया जा सकता है, ढाला जा सकता है, तोड़कर फिर से रचा जा सकता है, जिसे बेला–लपेटा जा सकता है, फिर से प्रयोग में लाया जा सकता है। इसके लिए विशेष निवेश की आवश्यकता नहीं है और यंत्र–औजार–सामान भी बहुत कम ही चाहिए।

मगर इन बातों से थोड़ा हटकर इस पर भी विचार करते हैं कि सीखने–सिखाने के एक जीवन्त, सशक्त और खुले वातावरण के लिए क्या आवश्यक है? इस पर विचार करना इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ज्ञानार्जन को आमतौर पर बस दक्षताएँ और ज्ञान हासिल करने तथा आत्मसात किए जाने तक सीमित करके देखा जाता है। हमें शायद इसके इस सीमित प्रयोग से आगे तक देखना होगा और अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषताओं की ओर भी ध्यान देना होगा – जैसे, सवाल करने और शंका के लिए गुंजाइश का होना,



अपने सम्बन्धों के बारे में जागरूक होना, देखना कि डर और भय तो पैदा नहीं किया जा रहा, काम करते समय गैर–लचीली व्यवस्थाओं के तहत तो काम नहीं हो रहा, बल–प्रयोग और अनुशासन का गलत अर्थ में प्रयोग और तुलना आदि की बात तो नहीं हो रही आदि–आदि।

यह एक चर्चा करने योग्य बात है कि जब इन सब पक्षों को एक साथ मिला दिया जाता है तो किस तरह हस्तकला और मिट्टी के एक स्टूडियो में समृद्ध अनुभव पैदा किया जा सकता है। हम कुछ अनिवार्य पक्षों को लेकर देख सकते हैं कि उन्हें किस तरह एक शिक्षक के लिए कक्षा के हालात में ढाला जा सकता है।

उत्तरदायित्व के साथ काम करने की पहलकदमी

हस्तकार्य के लिए स्थान का होना काम करने के लिए बहुत बड़ी प्रेरणा प्रदान करता है – वह चाहे व्यक्तिगत तौर

पर स्वतन्त्रता के साथ काम करने की बात हो या समूह में काम करने की। शिक्षक की न्यूनतम सहायता से विचारों और अभिव्यक्ति से भी सम्बद्ध होने का मौका मिलता है। शिक्षक की भूमिका यह सुनिश्चित करने की अधिक रहती है कि वे गम्भीर रहें, काम के प्रति सहज प्रतिक्रिया का रुख रखें और शान्त रहते हुए भी सक्रियता से ऊर्जा को बाहर निकाल पाएँ। बीच–बीच में विचारों का आदान–प्रदान और काम पर प्रतिक्रिया भी मिलती रहे, जिसका होना विचारों और तकनीकों को उत्पन्न करने की प्रक्रिया के लिए भी आवश्यक है।

मसलों को हल करने के लिए चर्चा और संवाद का प्रयोग शिक्षक द्वारा व्यवहार

सम्बन्धों और एक–दूसरे की खोजों को साझा करने से सम्बन्धित प्रश्नों को कक्षा में एकीकृत करने के बारे में सोचा जा सकता है, फिर ये चाहे काम से सम्बन्धित हों या अपनी सोच के बारे में। आवश्यक नहीं है कि काम और सोच में से किसी एक को अधिक वरीयता दी जाए – इसके बिना भी यह सब संवेदनशील तरीके से किया जा सकता है।

यदि आप समस्याओं और मसलों को हल करने के लिए भय का इस्तेमाल न करने के बारे में गम्भीर हैं, तो एक–दूसरे के साथ सम्प्रेषण के लिए आपस में बातचीत और संवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

आप कक्षा की शुरुआत किसी ऐसी बात पर चर्चा से कर सकते हैं जो सीखने–सिखाने के लिए कारगर प्रक्रिया का सहज प्रवाह होने से रोक रही है। यह कक्षा के दौरान भी किया जा सकता है।

हमारे सम्बन्धों का माहौल मिट्टी के स्टूडियो में एक–दूसरे की प्रतिभा और योग्यता की समालोचना या प्रशंसा के लिए स्थान रहता है और इस प्रकार विचारों के आदान–प्रदान और अलग–अलग तरह की प्रतिक्रियाओं के लिए भी अच्छी गुंजाइश रहती है। शिक्षक या बड़ी उम्र का कोई व्यक्ति मौके का लाभ उठाते हुए इस पर विचार कर सकता है कि किसी तरह की तुलना तथा पक्षपात के बिना, प्रेमभाव के साथ यह सब कैसे किया जाए ताकि एक खुले और भेदभावरहित वातावरण का उद्देश्य भी परास्त न हो।

शिक्षक को विद्यार्थियों के भावपूर्ण लम्हों के प्रति जागरूक रहना चाहिए और ध्यान देना चाहिए कि काम करते समय वे कैसे अपनी मनःस्थिति को प्रकट करते हैं। यदि शिक्षण के दौरान शिक्षक अपनी ही माँगों को थोपने पर लगा रहता है तो इस बात पर हमारा ध्यान ही नहीं जाता।

विद्यार्थियों के बीच की गतिशीलता को भी देखना होगा। हम उन्हें स्वतन्त्र छोड़ देते हैं तो वे एक–दूसरे के साथ इकट्ठा रहने के विचार से उत्तेजित और उसमें पूरी तरह व्यस्त हो जाते हैं। उन पर लगातार नियन्त्रण रखने के तौर–तरीके भी इसमें शायद बहुत अधिक मदद नहीं कर पाएँगे। निरन्तर निगरानी के बिना भी किस तरह विद्यार्थियों के साथ सम्बन्ध में शान्त रहते हुए कड़ाई का आभास पैदा किया जाए, यह शिक्षक के सामने लगातार रहने वाली एक चुनौती है। शिक्षक के लिए नवाचार की बात होगी कि वह इन पक्षों को बच्चों के साथ अपनी बातचीत में पिरो ले और वे इस पैटर्न के प्रति जागरूक हो जाएँ।

मूल्यांकन और प्रतिक्रिया

कला और शिल्प के क्षेत्र में बहुत बार हम तुरन्त प्रतिक्रिया देते हैं, जैसे – अच्छा है, अच्छा नहीं है, सुन्दर, बिल्कुल सही, कमाल का, वाह आदि–आदि। लेकिन कैसी होगी वह तथ्यात्मक या वस्तुपरक प्रतिक्रिया, जिसमें अत्यधिक प्रशंसा या नकारात्मक टिप्पणी के न होते हुए भी आलोचनात्मक सराहना का भाव हो? यह एक मुश्किल पक्ष है लेकिन इसे अनदेखा भी नहीं किया जा सकता क्योंकि बच्चे मूल्यांकन के ऐसे तरीकों के प्रभाव में आसानी से आ सकते हैं जो शायद उनके सहज रचनात्मक बोध और क्षमता को सीमित कर दें।

एक शिक्षक किसी भी कार्य के बारे में निर्णय कैसे लेता है (कि वह कैसा है) और बच्चों द्वारा किए गए काम का मूल्य कैसे लगाता है? यह एक बहस का विषय है जिसके कोई तैयार जवाब या तरीके नहीं हैं। लेकिन यह स्पष्ट है कि वयस्कों द्वारा काम को देखने के तरीके में कुछ गलत तो है और वे बहुत ही आरामदायक, हल्के तरीकों से मूल्यांकन करने की ओर प्रवृत्त रहते हैं ताकि बच्चों की कुशलता को आंकने के किसी न किसी तरीके तक जल्द ही पहुँच पाएँ।

इस समस्या से सम्बोधित होने का एक बहुत सरल तरीका है कि किए गए काम को प्रदर्शित करने के लिए खुला स्थान उपलब्ध करवाया जाए जहाँ वह सबके द्वारा देखा जा सके। प्रत्येक बच्चा कोई भी कलाकृति बनाने के बाद अपने विचार तथा इरादे को साझा कर सकता है। इससे कला–कृतियों की वरीयता तय करने, किस की कलाकृति अधिक अच्छी है और किसकी नहीं वाली समस्या से निपटा जा सकता है।

परिणाम से प्रक्रिया अधिक महत्त्वपूर्ण

सीखने–सिखाने के किसी भी अच्छे वातावरण के लिए आवश्यक है कि काम करने की प्रक्रिया को अधिक महत्त्व दिया जाए और अन्तिम परिणाम की चिन्ता न की जाए। कोशिश और प्रयोग करने का प्रतिरोध, जोखिम उठाने का विरोध और केवल उसी बात पर ध्यान देना जो हाथ में है – ये सब बातें शायद काम करने की प्रक्रिया के दौरान बच्चे को कसौटी पर न कस सकें।

बच्चे काम शुरू न कर पा रहे हों तो इसके क्या कारण हैं और राह की रुकावटें क्या हैं, यह पता लगाने में शिक्षक एक उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकता है।

बच्चे द्वारा पूरी मेहनत के साथ ध्यान से बनाई गई मिट्टी की कोई भी वस्तु सम्पूर्ण होने के बाद यदि ढह जाती है तो यह उसके लिए एक ऐसा अनुभव है जिससे वह कुछ सीख पाता है – बावजूद इसके कि उसकी बनाई वस्तु प्रदर्शित नहीं की जा सकती।

जब शिक्षक इन सब पक्षों और दृष्टिकोणों को ध्यान में रखता है, और एक गम्भीर उद्देश्य तथा सरोकार अपने सामने रखता है तो कक्षा में सीखने–सिखाने का माहौल निश्चित तौर पर बेहतर हो सकता है। अनुसरण के कोई विशेष, निश्चित तरीके नहीं हैं, बल्कि स्वयं के प्रति इस कटिबद्धता की आवश्यकता है कि लगातार, हर स्थिति में दृढ़ता और जिज्ञासा के साथ खोज करने की ऊर्जा बनी रहे।

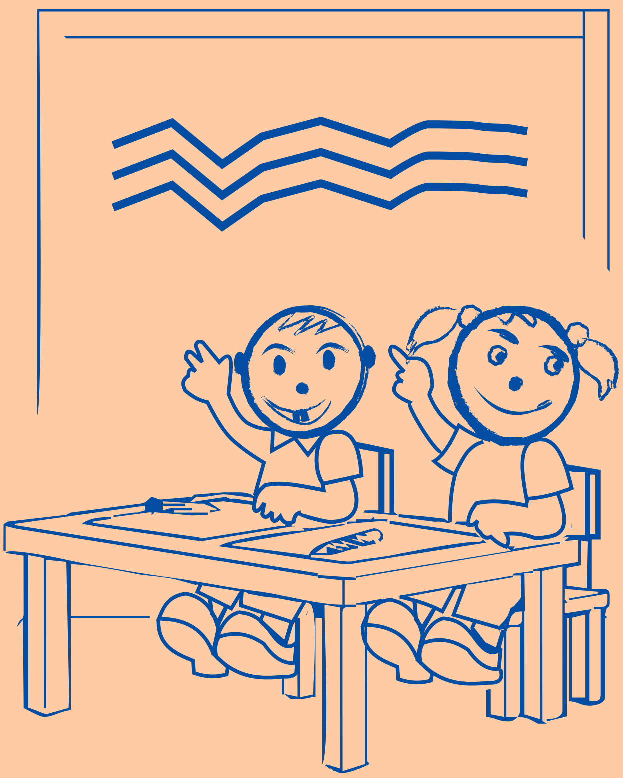
"सीखना असल में तब होता है जब प्रतिस्पर्द्धा की भावना नहीं होती।" – **जे. कृष्णमूर्ति**

"अधिकतर सीखना शिक्षण का नतीजा नहीं होता। बल्कि यह तो एक सार्थक पृष्ठभूमि में बे–रोकटोक हिस्सेदारी का नतीजा होता है। अधिकतर लोग 'उसके साथ' होने से सबसे बेहतर सीखते हैं मगर इसके बावजूद स्कूल उनके व्यक्तिगत, बोधात्मक विकास की पहचान को लम्बी–चौड़ी, विस्तृत योजना बनाने और जोड़–तोड़ के साथ सम्बद्ध करके देखते हैं।" –**इवान इलिच** की पुस्तक 'डी–स्कूलिंग सोसायटी' से।

ललिता मंजुनाथ ने द वैली स्कूल के जूनियर स्कूल में बच्चों के साथ काम किया है। बाद में सेण्टर फॉर लर्निंग (सी.एफ.एल.) में भी काम किया। उनकी रुचि बच्चों के लिए मिट्टी के बर्तन बनाने का कला और शिल्प केन्द्र स्थापित करने में भी पैदा हुई ताकि पदार्थों के साथ काम करने के रुचिकर तरीके तलाशे जाएँ। वर्तमान में वे सी.एफ.एल. में पूर्णकालिक कार्य से सेवानिवृत्त हो चुकी हैं और शिक्षा तथा ज्ञानार्जन पर पुनर्विचार में दिलचस्पी रखने वाले समूहों तथा अन्य स्कूलों के साथ काम करती हैं। उनसे lalita.manjunath@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** रमणीक मोहन



अनुभव
और
अर्न्तदृष्टि



सीखने के लिए वातावरण का निर्माण: सेक्मोल आल्टर्नेटिव इन्स्टिटयूट

अविनाश कुमार

"बच्चों को, शारीरिक दण्ड चाहे न दिया जाए, ... पूरी ताकत के साथ उन तक यह सन्देश सम्प्रेषित किया जाता है कि शिक्षक और समाज द्वारा स्वीकार होना है तो उन्हें अपनी घरेलू भाषा और संस्कृति के प्रति निष्ठा को त्यागना होगा। जब सन्देश (छिपा हुआ चाहे स्पष्ट) ..... यह हो कि 'अपनी भाषा और संस्कृति को स्कूल की चौखट पर छोड़कर आओ', तो बच्चे अपने अस्तित्व और पहचान के एक केन्द्रीय भाग को भी स्कूल की चौखट पर ही छोड़ आते हैं।" (कमिन्स, 2001)



फोटो सौजन्य : कृशिका शाह

मोटरसाइकिल को कंकड़ों और रेत पर कुशलता से सम्भालते हुए मुझे बस उसकी धीमी ठुक ठुक आवाज सुनाई देती है; और सूखी, बंजर पहाड़ियों से घिरी घाटी के सपाट मैदान पर से होकर गुजरती हुई हवा का शोर। मुझे हवा में एक तीखापन महसूस होता है। ऊपर देखता हूँ तो दूर क्षितिज पर गहरे, काले बादल उमड़ते दिखाई देते हैं। मुझे शक हुआ कि मैंने कुछ किलोमीटर पहले एक दोमुँही सड़क पर गलत रास्ता न पकड़ लिया हो। मगर जब कोई भी इन्सान दिखाई न दिया तो मैंने उसी रास्ते पर बढ़ते जाने का निर्णय लिया। ऊपर को चढ़ते एक पहाड़ी रास्ते पर जाते हुए मैं एक बार फिर तारकोल की लहराती सड़क पर आ पहुँचा; और कुछ ही मोड़ के बाद, मैं पहाड़ की ढलान पर खड़ा हुआ तो अगली घाटी को ऊपर से देखते हुए मुझे अपने गन्तव्य स्थान की पहली झलक मिली।

वह अपने आसपास के वातावरण से बिल्कुल अलग दिखाई देता है – मीलों तक फैली बंजर धरती के बीच बसाहट का एक हरा–भरा टुकड़ा। मुझे कुछ सौ फीट नीचे एक खाई में बहती सिन्धु नदी की आवाज आती है जो इस घाटी को दो हिस्सों में बाँटती है। स्टूडेन्ट्स एजुकेशनल एण्ड कल्चरल मूवमेन्ट ऑफ लद्दाख (सेक्मोल) तक पहुँचने के अन्तिम मील की यात्रा करते हुए मेरा मन इस कोशिश में है कि उस झलक से पैदा होने वाली पहली भावनाओं को एक वाक्यांश या एक शब्द में किसी तरह बाँध लूँ – कई शब्द और वाक्यांश दिमाग में आते हैं, लेकिन एक है जो बाकी सबसे अधिक देर तक बना रहता है – मरूद्यान / नख्लिस्तान, यानी मरुस्थल के बीच धरती का हरा–भरा टुकड़ा।

सेक्मोल की कहानी

लद्दाख देश के सबसे दूर, अलग–थलग इलाकों में से एक है। लेह वहाँ के दो जिलों में से एक है। भाषाई और जातीय दृष्टि से अल्पसंख्यक, यहाँ के लोग 9,000 से 12,000 फुट की ऊँचाई पर ऐसी बसाहटों में फैले हैं जो एक छोटी पहाड़ी पर 10–15 घरों तक भी सिमट सकती है।



SECMOL Alternative Institute Campus
Photo Credit: Jamunalnamdar

यहाँ के सरकारी स्कूल अपनी प्रभावहीनता के लिए बदनाम हैं। यह बात दसवीं की बोर्ड परीक्षाओं में स्थानीय विद्यार्थियों के उत्तीर्ण होने के बहुत ही कम प्रतिशत में झलकती है, जो कई सालों तक लगभग 5 प्रतिशत ही था (गांगुली, 2001)।

सेक्मोल के संस्थापकों में से एक, सोनम वांग्चुक ने स्कूली व्यवस्था के इस रूप–स्वरूप को देखा–अनुभव किया था। वे भाग्यशाली रहे कि उन्हें दिल्ली के एक स्कूल में पढ़ने का मौका मिला। शिक्षकों द्वारा उन्हें दिए गए प्रोत्साहन के बूते वे अपने खोल से बाहर आ पाए और बाद में श्रीनगर के एक महाविद्यालय से स्नातक परीक्षा में उत्तीर्ण होकर इंजीनियर के तौर पर निकले। अपने स्नातक वर्षों में कक्षा दस की परीक्षा देने वाले लद्दाखी विद्यार्थियों को अकादमिक सहायता देते हुए एक बार फिर उनका सामना उस क्षेत्र की प्रभावहीन स्कूली व्यवस्था से हुआ और एक बार फिर इस बात ने उन पर असर डाला। 1988 में, अपने स्नातक बन जाने के एक साल बाद, उन्होंने कुछ और लद्दाखी नौजवानों के साथ मिलकर सेक्मोल की स्थापना की (अशोका इण्डिया, 2002)।

सदियों से सीमित संसाधनों और बहुत कठिन मौसमी और भौगोलिक हालात के चलते लद्दाख में एक ऐसी संस्कृति विकसित हुई है जो आत्मनिर्भरता और लम्बे दौर के लिए टिकाऊ पर्यावरण को गहरा महत्त्व देती है। मगर एक आम–सामान्य लद्दाखी बच्चा औपचारिक स्कूली शिक्षा प्राप्त करने से वंचित ही रहा है। बच्चे खेतों और घरों में अपने माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नानी, अड़ोस–पड़ोस को देखते और उनके साथ काम करते हुए बहुत कुछ सीखते रहे। "काम करते हुए ही लद्दाख के भूतकाल के गीत और कहानियाँ सुनाए जाते थे। और प्रत्येक बच्चा अपना घर बनाने–चलाने, खेत या मवेशियों को सम्भालने, पारिवारिक आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो जाता था....शिक्षा का मकसद जवान पीढ़ी को सार्थक काम करने के लिए तैयार करना और लद्दाख के अद्वितीय मूल्यों और संस्कृति को आगे ले जाने का था.... और वह, स्थायी, खुशहाल समुदायों के लिए इस बात की गुंजाइश निकालती थी कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहें" (मिंगल, 2010)।

सेक्मोल ने शुरुआत उन विद्यार्थियों के लिए पाठ्यक्रम तैयार करने से की जो कक्षा दस की परीक्षा देने जा रहे हों या उसमें अनुत्तीर्ण रहे हों। सोनम बताते हैं कि उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि "ये विद्यार्थी खुद को बहुत ही कठिन स्थिति में पाते थे। उन्हें समाज द्वारा असफल हो चुका माना जाता था जबकि ये विद्यार्थी खेत पर रहते हुए स्वयं अपना भोजन पैदा कर रहे होते थे.... लेकिन इन्हें स्कूल इस आशा में भेजा जाता था कि वे एक और ही तरह के शिक्षित समाज का हिस्सा बन पाएँ। इसलिए वे अपनी परम्परागत दक्षताएँ खो चुके थे और नई दक्षताएँ वे अभी हासिल नहीं कर पाए थे .... वे स्वयं को बीच में ही कहीं खोया हुआ महसूस करते थे और बहुत हतोत्साहित भी" (मिंगल, 2010)।

समय बीतने के साथ सोनम को एहसास हुआ कि यदि "स्कूल में ही नहीं, कहीं भी (फिर चाहे वह कारों की फैक्टरी हो या जैम बनाने की या कोई और) 95 प्रतिशत उत्पाद फेल हो जाएँ, तो इसका अर्थ है कि असल नुक्स उत्पाद में नहीं बल्कि व्यवस्था में है... और व्यवस्था को बदलना होगा" (मिंगल, 2010)। स्थानीय विद्यार्थियों और शिक्षा व्यवस्था के साथ काम करने के अनुभव के आधार पर सेक्मोल ने अपने लिए चार मुख्य चुनौतियाँ चिह्नित कीं – शिक्षण का माध्यम, पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यचर्या में सांस्कृतिक तौर पर अप्रासंगिक तथा अनजान विषयवस्तु, अप्रशिक्षित शिक्षक और समुदायों द्वारा स्कूलों को अपना न पाना।

पिछले 25 सालों में इसने इन चारों समस्याओं को सम्बोधित करने पर काम किया है और विभिन्न स्तरों की कामयाबी और चुनौतियों का सामना किया है (मेनन, 2010)। लेकिन इस पूरे समयकाल में उसने ध्यान कक्षा दस में अनुत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों की मदद पर ही केन्द्रित किया है। और यह सोनम द्वारा डिजाइन किए गए, 1994 में लेह से 16 किलोमीटर पश्चिम में स्थित फे में बंजर धरती के एक टुकड़े पर निर्मित आल्टर्नेटिव इन्स्टिट्यूट के कैम्पस में किया जाता है, जहाँ मैं जा रहा था।

सेक्मोल आल्टर्नेटिव इन्स्टिट्यूट

बाहर तीव्र हवा चल रही है। बरसात होने लगी है। मैं कैम्पस की रसोई के साथ लगते एक गर्म कमरे में बैठा हूँ। कुछ दोस्त, विदेशी स्वयंसेवी और विद्यार्थी भी हैं, जिनमें से कुछ बिल्ली द्वारा त्यागे जा चुके एक बच्चे को एक कोने में खिला–पिला रहे हैं। एक पूर्व विद्यार्थी चोज़ांग, जो दिन–प्रतिदिन की गतिविधियों के प्रबन्धन में मदद करता है, संस्थान के बारे में हमें बताता है – "हम एक सामान्य स्कूल की तरह (आधिकारिक) पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम पर ध्यान केन्द्रित नहीं करते। हम असफल रह गए बच्चों को लेते हैं और प्रयास करते हैं कि उनका स्वयं में विश्वास फिर से पैदा हो, क्योंकि आप एक बार असफल हो जाते हैं तो सब आपको तिरस्कार से देखने लगते हैं – 'ओह, तुम असफल रहे, तुम कुछ नहीं कर सकते, तुम कुछ करने लायक नहीं हो।' हम उनके आत्मविश्वास का स्तर बढ़ाने की कोशिश करते हैं... इसे हम एक साल का 'बुनियादी पाठ्यक्रम' कहते हैं। सब विद्यार्थी चंगतांग, नुब्रा जैसे लद्दाख के सुदूर इलाकों से होते हैं और सब सरकारी स्कूलों में पढ़े होते हैं।"

मैं अगले कुछ घण्टे बुनियादी साल के विद्यार्थियों के साथ बिताता हूँ। उन्हें बुद्ध के दर्शन से सम्बद्ध सवालों पर बहस करते और अपने विचार रखते तथा लद्दाखी गीत गाते देखता हूँ। उनके साथ रात का भोजन करता हूँ। उनके सवालों के जवाब देता हूँ कि मैं उनके संस्थान में क्यों आया हूँ। बाद में हम एक बड़े हॉल में एकत्र होते हैं। एक दोस्त एक गतिविधि में मदद कर रही है। वह कहती है – "तुममें से प्रत्येक की एक कहानी है। बदलाव की कहानी, जिसके तहत कोई बड़ा परिवर्तन आया है।" वह हम सबको आमन्त्रित करती है कि हम स्वयं में छुपे पाँच सालों पर विचार करें – और उन पाँच 'योद्धाओं' के बारे में सोचें जो हमें इन सालों से जूझने में मदद कर सकते हैं। फिर वह सुझाव देती हैं कि हम जोड़े बना लें और एक–दूसरे के साथ अपने विचार साझा करें। मेरी साझीदार एक युवा लड़की है जो हाल ही में संस्थान में आई है। वह 'परीक्षा' को अपने पहले डर के रूप में सूचीबद्ध करती है। "आज हमारी परीक्षा थी, नहीं!" बाद में वह धीमी आवाज में व्याख्या करती है। "मैं जवाब नहीं दे पाई। यानी मेरा इम्तिहान था, मगर मैं सब भूल गई।" वह कुछ देर चुप रही। नीचे देखती रही। फिर मैंने उसकी आँखों में आँसू घिरते देखे। "पिछली रात मैं 3 बजे तक पढ़ती रही। सुबह उठी और फिर पढ़ने लगी। लेकिन सवाल उसमें से नहीं आए जो मैंने पढ़ा था।" अब वह सुबक रही है। मैं सोच रहा हूँ कि इस वैकल्पिक संस्थान में बिताए बारह महीने इन बच्चों के जीवन में क्या कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर ला पाते होंगे?

अगली सुबह मैं यही सवाल सेतान से करता हूँ। वह भी एक भूतपूर्व विद्यार्थी है जो हाल ही में संस्थान में शिक्षक के रूप में शामिल हुआ है। उसने बताया कि अधिकतर विद्यार्थी न केवल यह कि यहाँ पर एक साल बिताने के बाद परीक्षा में सफल हो पाते हैं, बल्कि "अधिकतर लोग आगे भी पढ़ते हैं। और इनके अलावा अन्य.... मेरा मतलब है कि वे आवश्यक ज्ञान ले पाते हैं, कुछ विचार ग्रहण करते हैं – कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं।" मुस्कुराते हुए वह बोलता है, "यहाँ से सफल होकर निकलने पर जब हम वापिस स्कूलों में जाते हैं तो वे हैरान होते हैं – ओह, इसमें तो बहुत सुधार हो गया है!"

तो संस्थान किस प्रकार उन विद्यार्थियों को सम्भाल पाता है जिन्हें उनके परिवार और दोस्तों द्वारा नाकाम इन्सान के रूप में देखा जाता है, और जो एक विशेष तरह से सीखने की आदत में होते हैं। कैसे वह उन्हें अपने जीवन का दायित्व सम्भालने वाले युवक–युवतियों के रूप में बदल देता है?

सेक्मोल द्वारा अपनाए गए विभिन्न दृष्टिकोणों में से तीन आपस में सम्बद्ध रणनीतियाँ प्रमुख तौर पर दिखाई देती हैं।

स्थानीय भाषा और विषयवस्तु

1947 में जम्मू–कश्मीर में शामिल होने के बाद से लद्दाख की राजकीय भाषा उर्दू रही है। 6 साल की बच्ची जब स्कूल में प्रवेश पाती है तो उसे लद्दाखी से पूरी तरह उर्दू की ओर आना पड़ता है, जो लेह के अधिकतर गाँवों के लिए एक अजनबी भाषा है। जैसे कि सोनम याद करते हुए कहते हैं, "बच्चों के लिए स्कूल में होना एक मानसिक आघात की तरह होता था जहाँ उनका स्वागत एक छड़ी से होता, जहाँ उन्हें पिछले सीखे हुए को छोड़कर नए सिरे से सीखना होता था। आप 'दूध' को 'ओमा' कह देते तो थप्पड़ पड़ता था। जो बात वे लद्दाखी में बहुत अच्छी तरह जानते थे, उसे अगर उर्दू में न कह पाते तो तिरस्कार झेलना पड़ता (मिंगल, 2010)।" कक्षा नौ में उर्दू भी न रही और अब सब विषयों में शिक्षण का माध्यम अँग्रेजी कर दिया गया – विद्यार्थियों को नई भाषा सीखने के लिए दो ही साल मिले जिसके बाद उन्हें सब छह विषयों की अपनी मैट्रिक परीक्षा उसी भाषा का प्रयोग करते हुए देनी थी। जैसे कि सोनम कहते हैं, "मैं नहीं जानता कि यह व्यवस्था कैसे बना दी गई। ऐसी व्यवस्था तो दुश्मन के लिए बनाई जाती है, न कि अपने देश के भावी नागरिकों के लिए (मिंगल, 2010।"

यह भी एहसास हुआ कि बात केवल भाषा की नहीं थी – पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु भी बहुत बार विद्यार्थियों के लिए पूरी तरह अजनबी होती थी। दिल्ली या जम्मू में



Textbooks using images familiar to Ladakhi children
Photo Credit: SECMOL

तैयार इन किताबों और पाठ्यचर्या में लद्दाख के इतिहास, संस्कृति, पेड़–पौधों आदि के लिए कोई स्थान नहीं था। इनमें याक और खूबानी की बजाए हाथियों और वनों की बात होती थी (गांगुली, 2001)। गैर–स्थानीय शिक्षक विषयवस्तु की प्रासंगिकता को पहले से मानकर चलते थे, और उनके द्वारा 'आदिम' या 'असभ्य' माने जाने से अलगाव की भावना और भी अधिक प्रबल हो जाती थी।

सेक्मोल कमिन्स (2001) द्वारा कही गई बात को समझता था – "जब बच्चे नकारे जाने की भावना से ग्रसित होते हैं तो कक्षा में हो रहे शिक्षण में उनकी सक्रिय हिस्सेदारी की सम्भावना बहुत कम ही होती है।" इसके साथ ही, "स्कूलों को चाहिए कि वे बच्चों द्वारा कक्षा में अपने साथ लाए गए ज्ञान और अनुभव से लाभ उठाएँ। हम ऐसा जानते–बूझते हुए करें या अन्जाने में, हम बच्चों की भाषा को बरबाद करते हैं और उनके माता–पिता तथा दादा–दादी–नाना–नानी के साथ उनके सम्बन्ध में दरार पैदा करते हैं तो हम शिक्षा के सार के ही विरुद्ध जा रहे होते हैं।"

सेक्मोल में आने वाले विद्यार्थी आमतौर पर ग्रामीण इलाकों से आते हैं। वे पूरी सुविधा से लद्दाखी में ही बात कर पाते हैं। इसलिए शुरू के कुछ महीने उन्हें अपनी मातृभाषा में ही बात करने के लिए प्रेरित किया जाता है। अपने समकक्षों के सामने प्रस्तुतीकरण आदि के लिए तथा अपनी संस्कृति के बारे में अधिक जानने और साझा करने के लिए भी प्रेरित किया जाता है। शिक्षक भी बहुत अच्छे से लद्दाखी में बात कर पाते हैं। इस पूरी प्रक्रिया की वजह से बच्चे कक्षा के अन्दर भी और बाहर भी सहज महसूस करते हैं। जैसे–जैसे वे अँग्रेजी तथा हिन्दी/उर्दू जैसी अन्य भाषाओं को अपने सहपाठियों, विदेशी तथा देशीय स्वयंसेवकों से ग्रहण करना शुरू करते हैं, विद्यार्थी धीरे–धीरे अन्य भाषाओं की ओर बढ़ते जाते हैं – और उन्हें इस बात की शर्म भी महसूस नहीं होती कि वे इससे पहले इनमें प्रवीण नहीं थे।

सेक्मोल का एक सक्रिय प्रकाशन समूह भी है जिसका प्रयास रहता है कि एक ऐसा संस्थागत "माहौल बनाया जाए जिसमें सम्पूर्ण बच्चे के भाषाई और सांस्कृतिक अनुभव को स्वीकारा और तर्कसंगत ठहराया जाए" (कमिन्स, 2001)। उनकी विशेष तौर से दो मुख्य प्राथमिकताएँ रही हैं – (1) लद्दाखी विद्यार्थियों के लिए सांस्कृतिक और पर्यावरण की दृष्टि से प्रासंगिक पाठ्यपुस्तकें विकसित करना (उदाहरण के लिए विज्ञान और सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें), और (2) बच्चों की पुस्तकों, स्थानीय पत्रिका आदि जैसी सह–पाठ्यचर्या सामग्री आम बोलचाल वाली लद्दाखी के लिखित रूप में विकसित करना ताकि वह बहुत लोगों द्वारा पढ़ी जा सके। इससे जाने–पहचाने प्रमुख भाव और सन्दर्भ पाठकों के सामने आ जाते हैं और उनके लिए अकादमिक विमर्शों में भाग लेना तथा उन्हें समझ पाना आसान हो जाता है।

आत्मविश्वास को पुनः रचना

एक और केन्द्रीय विचार कई वर्तमान और भूतपूर्व विद्यार्थियों से बात करने पर सामने आया। अपने भरसक प्रयास के बावजूद परीक्षा में उत्तीर्ण न हो पाने से उनके मित्रों और परिवारों द्वारा उनकी क्षमताओं पर सवालिया निशान लगाया जाना उनके लिए चोट पहुँचाने वाली बात थी। सेतान ने अपने अनुभव को याद करते हुए कहा, "मैं उर्दू और गणित में अनुत्तीर्ण रहा। मैंने सच में बहुत मेहनत की थी। लेकिन घर के लोग भी कहते थे – तुम पढ़े नहीं होगे, आदि। इस कारण से मैं बहुत दबाव में था – क्या करें, व्यवस्था ही ऐसी है।" उसका मानना है कि ग्रामीण लद्दाख की प्रथाएँ बच्चों को सार्वजनिक रूप में या बेझिझक अपनी राय व्यक्त करने या अजनबियों के साथ खुलेतौर पर आदान–प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करतीं। इस वजह से वे संकोची बने रहते हैं। "अगर यहाँ एक समूह बैठा हो.... कोई कह देगा, 'चलो जवाब दें।' और आप कहेंगे, 'तुम जवाब दो।' तो वह जवाब नहीं देगा, क्योंकि उनकी आदत है...झुक जाने की। और सबसे बड़ी गलती.... माता, पिता.... जब भी कोई मेहमान आया हो..... वे कहेंगे, वहाँ मत जाओ। उन्हें लगता है कि मेहमान कुछ कह देंगे। इसलिए वे बच्चे से कहते हैं, 'शर्म नहीं आती? चुप करके बैठ जाओ!' मेरा मतलब है, 4–5 साल की उम्र से आप यह सब इतना अधिक करते हैं – आप बच्चे के मन में डाल देते हैं.... कि मैं अगर कुछ बोला तो लोग क्या सोचेंगे?"

संस्थान ने चुनौती की जटिल जड़ों और प्रकृति को समझ लिया है और इस बात के लिए कई कदम उठाए जाते हैं कि बच्चे स्वयं में विश्वास को जगा पाएँ। इनमें से एक बुनियादी कदम है – करीब–करीब पूरे कैम्पस को चलाए जाने के लिए विद्यार्थियों के हवाले कर देना। चोजांग ने बताया, "सम्पूर्ण कैम्पस को लोकतान्त्रिक तरीके से चलाया जाता है.... एक छोटी सरकार की तरह। हर माह चुनाव होते हैं और एक विद्यार्थी को किसी एक बात के लिए समन्वयक चुना जाता है। वह एक व्यक्ति होस्टल चला सकता है। और प्रत्येक विद्यार्थी का कुछ न कुछ दायित्व



Students interacting with volunteers on campus
Photo Credit: Accessible Horizon Films

होता है – कोई तो बाग की देखभाल करेगा, कोई स्वच्छता की या विद्युत के लिए सौर बैट्रियों की; किसी को गायों का ध्यान रखना होगा जिनसे हमें दूध तथा और बहुत कुछ मिलता है। इस प्रकार विद्यार्थी करते हुए ही सब कुछ सीखते हैं।"

वे नई दक्षताएँ प्राप्त करते हैं, दायित्व निभाना सीखते हैं, समकक्षों में लोकतान्त्रिक तरीके से जीते हैं – इस सबके चलते नए मित्र उनमें जो भरोसा जताते हैं, वह उन्हें असफल कहलाए जाने के आघात को भुलाने में और फिर से आत्मविश्वास निर्मित करने में मददगार होता है। चोज़ांग कहते हैं, "यह ऐसा ही है जैसे जब कोई दुकान पर बैठने लगता है या लेखा–जोखा सम्भालने लगता है, तो खुद पर उसका विश्वास जमने लगता है। उन्हें लगता है कि लोग उन पर भरोसा कर रहे हैं। और इस तरह वे धीरे–धीरे बढ़ते हैं, अधिक सीखना शुरू करते हैं। जब वे असफल होते हैं.... जब समाज, माता–पिता, सब कहते हैं 'तुम असफल रहे, तुम कुछ नहीं कर सकते', तो वे टूट जाते हैं। और फिर वे यहाँ आते हैं, बहुत कुछ करते हैं, देखते हैं कि लोग उन पर भरोसा करते हैं..... हम यही सब कुछ करते हैं बुनियादी साल में।"

भाषा किसी के व्यक्तित्व के लिए केन्द्रीय स्थान रखती है। किसी के लिए भी समुदाय में भागीदारी हेतु इसकी बुनियादी भूमिका है और इस प्रकार वह सशक्तीकरण का आभास भी देती है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए सेक्मोल संस्थान सार्वजनिक मंच पर बोलने और सुनने की दक्षताओं के विकास पर बहुत बल देता है। हर दूसरे महीने प्रत्येक विद्यार्थी अपने दायित्वों के बारे में प्रस्तुतीकरण देता है। चोज़ांग प्रस्तुतीकरण के उदाहरण देते हैं, "जो कुछ उन्होंने कक्षा में सीखा, किस प्रकार उन्होंने कुदरती खेती के तहत बाग की देखभाल की या सौर पैनलों की देखभाल की या खजांची के तौर पर दुकान के लेन–देन का ध्यान किया आदि।" शुरू में प्रस्तुतियाँ लद्दाखी में की जाती हैं और जैसे–जैसे विद्यार्थी अन्य भाषाओं को समझने लगते हैं उन्हें अन्य भाषाओं में भी प्रस्तुति करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

इसके अलावा इस संस्थान द्वारा पिछले दो दशकों से किए जा रहे अच्छे काम ने देश–विदेश से स्वयंसेवकों और आगन्तुकों को आकर्षित किया है (एक्सेसिबल हॉराइज़न फिल्म्स, 2012)। उनमें से कई पाठ्यचर्या से इतर, पुस्तक–निर्माण से लेकर संगीत या नृत्य तक की कक्षाएँ लेते हैं। कुछ अकादमिक मदद भी देते हैं या संसार के विभिन्न हिस्सों में घूमते हुए प्राप्त अनुभवों को या असाधारण व्यवसायों के बारे में अनुभव साझा करते हैं। नियमित रूप में इतने अलग–अलग तरह के लोगों के सम्पर्क में आने से विद्यार्थियों को नई तरह की अन्तर्दृष्टि मिलती है और उनके लिए नई सम्भावनाएँ खुलती हैं।

प्रभावशाली शिक्षण–पद्धति

शुरू के कुछ महीनों में विभिन्न गतिविधियाँ करते हुए सीखने पर बल दिया जाता है ताकि विद्यार्थी आत्मविश्वास हासिल कर पाएँ। लेकिन संस्थान इस तथ्य पर से ध्यान नहीं हटाता कि जिन परीक्षाओं में वे असफल रहे थे, वही परीक्षाएँ फिर से लिया जाना और विद्यार्थियों का उनमें अच्छा प्रदर्शन करना भी एक बहुत बड़े सहायक और उत्प्रेरक का काम कर सकता है। इस प्रकार उन्हें निरन्तर अकादमिक मदद भी मिलती रहती है। इसका एक अहम हिस्सा उन्हें अपनी पुरानी आदतों को छोड़ने और सीखने–सिखाने के नए तरीकों से अवगत होने में मदद करने का होता है। यह अकादमिक मदद 'प्रयोग के माध्यम से सीखना' और 'सीखे गए को प्रयोग करना' के इर्द–गिर्द केन्द्रित होती है। यह इसलिए, कि देश के कई अन्य हिस्सों के सरकारी स्कूलों की ही तरह यहाँ के सरकारी स्कूलों में भी पाठ्यपुस्तकों या कक्षा में होने वाली चर्चाओं को न समझ पाने की वजह से विद्यार्थी अमूमन विषयवस्तु को रटने लगते हैं। सेतान से जब पूछा गया कि वे इस भाषा को दस साल तक पढ़ने के बावजूद उर्दू के इम्तिहान में असफल क्यों रहे, तो उन्होंने कहा, "लेकिन वे इस तरह नहीं सिखाते! पढ़ाने का उनका तरीका.. मेरा मतलब है.... आप नहीं समझेंगे। शिक्षक करते क्या हैं? वे स्वयं पढ़ते हैं.. .. फिर वह हमें कहानी का सार बता देंगे। और फिर उपयुक्त पंक्तियाँ – ये इस सवाल के लिए, ये..... ।"

"यहाँ विद्यार्थियों में सुधार हो रहा है – यहाँ हम अन्य लोगों को बात करते हुए देखकर सुधार करते हैं। जब दो लोग बात करते हैं.... हम देखते हैं.... वे कैसे बात कर रहे हैं, और फिर हम स्वयं बात करते हैं। यहाँ अगर विज्ञान है तो वह सौर–विज्ञान है (कैम्पस लगभग पूरी तरह ही सौर–ऊर्जा पर निर्भर है और विद्यार्थी सौर नेटवर्क को सम्भालने, उसके प्रबन्धन का काम करते हैं)। या पर्यावरण विज्ञान है। जब आप स्थानीय बातों के बारे कुछ पढ़ते हैं और



Students discussing the environmental benefits of local mud-block buildings
Photo Credit: Accessible Horizon Films

व्यावहारिकता में काम करते हैं..... तो स्वाभाविक तौर पर आप बाहर की बातों में भी दिलचस्पी लेंगे।"

अकादमिक मदद सर्दी के पूरे मौसम में भी चलती रहती है जब स्वयंसेवियों और आगन्तुकों की संख्या घट जाती है, और विद्यार्थी शैक्षणिक सत्र का अन्त आने तक फिर से परीक्षा के लिए तैयार हो जाते हैं।

निष्कर्ष

सेक्मोल आल्टर्नेटिव इन्स्टिट्यूट विद्यार्थियों के लिए एक मददगार माहौल बनाने में कामयाब हुआ है। जैसा कि सोनम कहते हैं, "ये वे विद्यार्थी हैं जिन्हें अपने जीवन के 10 कीमती साल स्कूलों में बिताने के बाद घर भेज दिया गया था।" यह कामयाबी दो तरह से हासिल की गई – (क) विद्यार्थियों के असफल होने के व्यवस्थागत कारणों की तथा विद्यार्थियों द्वारा सामना की जा रही व्यक्तिगत चुनौतियों की प्रकृति और गम्भीरता की सूक्ष्मभेदी समझ विकसित करके, तथा (ख) कुछ गिनी–चुनी रणनीतियों पर ध्यान केन्द्रित करके और उन्हें बढ़िया तरीके से लागू करके।

सीमित संसाधनों के साथ काम करने की बात को ध्यान में रखते हुए वे कैम्पस पर पूर्णकालिक मनोविज्ञान–विशेषज्ञ या करियर–परामर्शदाताओं को रखे जाने पर बल नहीं देते। बल्कि उन्होंने इस बात पर अधिक ध्यान देने को चुना है कि एक ऐसा माहौल बनाया जाए जो बच्चों की भाषा और संस्कृति को स्वीकार करता है – और इस प्रकार उन्हें भी स्वीकार करता है। वे इस बात को समझते हैं कि मित्रों और परिवार द्वारा एक असफल व्यक्ति के तौर पर देखे जाने पर बच्चों का स्वयं में विश्वास बहुत गहरे तक हिल जाता है, और सुदूर गाँवों में उनके अलग–थलग व्यतीत हुए जीवन ने शायद उन्हें उस जीवन के लिए तैयार नहीं किया होगा जो उन्हें आगे जीना है। इसलिए संस्थान उन्हें दायित्व सम्भालने और निर्णय लेने की अनुमति देकर, और इससे भी महत्त्वपूर्ण, उन पर गहरा भरोसा रखकर, उनके आत्मविश्वास को फिर से निर्मित करने और बल प्रदान करने की कोशिश करता है।

सेक्मोल ने अभी स्थानीय सरकार के साथ अपना काम फिर से शुरू नहीं किया है और उसके सामने अब भी कई चुनौतियाँ हैं (मेनन, 2010)। लेकिन अगले दिन जब मैं कैम्पस से निकल लेह की सड़क पर था, मुझे फिर से वह शब्द याद आया जो मेरे लिए उस कैम्पस की पहली झलक का सार था। दो दशकों से जो हजारों विद्यार्थी यहाँ से निकले हैं, उनके लिए यह संस्थान सच में एक नख्लिस्तान, एक मरूद्यान रहा है – उनके अस्तित्व को पुनर्जीवित करता, उन्हें स्वयं को तैयार करने में मदद करता और एक नई यात्रा पर फिर से विदा करता ताकि वे नए पथ तलाश पाएँ और नए गन्तव्यों की ओर बढ़ सकें।

References

- Cummins J (2001) Bilingual Children's Mother Tongue: Why Is It Important for Education? Sprogforum, 7(19), 15-20. Retrieved from:http://www.fiplv.org/Issues/CumminsENG.pdf
- Ganguly , A. (2001, June 25). Ladakh's schools are now more culturally rooted, thanks to SECMOL. Outlook , Retrieved from http://www.outlookindia.com/article.aspx?212285
- Ashoka India. (2002). *Profile of Sonam Wangchuk*. Retrieved from http://india.ashoka.org/fellow/sonam-wangchuk
- Mingle, J. (2010). Rewriting the books in Ladakh. *Cultural Survival*, Retrieved from http://www.culturalsurvival.org/publications/cultural-survival-quarterly/india/rewriting-books-ladakh
- Menon, S. G. (2010, July 19). What you did not watch in 3 idiots - rethink after Ladakh education initiative fell victim to bureaucracy and resentment. *The Telegraph*. Retrieved from http://www.telegraphindia.com/1100719/jsp/frontpage/story_12700204.jsp
- Accessible Horizon Films. (Producer) (2012). *Secmol: Short documentary film* [Web]. Retrieved fro http://www.youtube.com/watch?v=MC31jkmymlwm

आभार: सेक्मोल जा पाना सम्भव बनाने के लिए लेखक जर्नीज़ विद मीनिंग तथा इकोलॉजिकल फुटप्रिन्ट, लेह का धन्यवाद करते हैं।

अविनाश कुमार विप्रो में काम करते हैं। यहाँ वे 'विप्रो अप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स' (WATIS) नाम की पहलकदमी में मदद करते हैं, जो भारत में स्कूली शिक्षा सुधारों के लिए क्षमतावर्द्धन के लिए कार्यरत है। इससे पहले उन्होंने एक मीडिया कम्पनी में प्रोजेक्ट मैनेजर के तौर पर काम किया और शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाली एक संस्था से भी जुड़े रहे। अविनाश ने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर डिग्री और विश्वेसरैया टेक्नॉलॉजिकल यूनीवर्स्टी से इंजीनियरिंग की स्नातक डिग्री हासिल की है। उनसे atavinash.kumar@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद:** रमणीक मोहन



आत्मा की संस्कृति: अधिगम हेतु सक्षम
आन्तरिक वातावरण का निर्माण

प्रेरणा शिवपुरी एवं श्रीनिवासन

वे सभी जोड़ों में काम कर रहे थे। कक्षा में वही धमाचौकड़ी मची हुई थी जिसकी उम्मीद चौथी कक्षा के बच्चों से की जा सकती है। शिक्षिका धातु की एक छोटी–सी घण्टी बजाती हैं और उसकी ध्वनि सुनते ही बातचीत का सारा शोर धीरे–धीरे एक कोमल मौन में खो जाता है। बच्चे बैठने के लिए अपनी चटाइयाँ उठाते हैं, एक गोला बनाते हैं, अपनी आँखें बन्द करते हैं और अपना दैनिक अभ्यास शुरू करते हैं। इस सबके दौरान मुझे कक्षा में किसी वयस्क (शिक्षिका) की उपस्थिति का ध्यान ही नहीं आया। मानो वे वहाँ थीं ही नहीं।



Photo Courtesy: The Heritage School, Gurgaon

ऊपर वर्णित दृश्य एक ऐसी कक्षा की गवाही देता है जिसमें बाहरी तौर पर यह तो नजर आता है कि वहाँ पढ़ाने का तरीका बेहद अलग है, लेकिन निश्चित रूप से हम यह बात नजरअन्दाज कर जाते हैं कि इतने सुन्दर दृश्य के पीछे बच्चों व शिक्षक के आन्तरिक स्तर पर कितनी अधिक मात्रा में मेहनत की गई होगी। यहाँ हम यह भी जोड़ना चाहेंगे कि बच्चों के आन्तरिक संसार का ज्ञान प्राप्त करने की असमर्थता औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में कोई नई बात नहीं है। वास्तव में देखें तो अधिकतर हम विद्यार्थियों की जिस बात को महत्त्व देते हैं और आँकते हैं वह यह है कि उनमें पहले दिए ज्ञान को ज्यों का त्यों दुहराने या पुनः प्रस्तुत करने की कितनी योग्यता है, बजाए इसके कि हम उनकी व्यक्तिगत क्षमताओं को आँकें। एक ओर तो हम मानकों व मानदण्डों के द्वारा वस्तुनिष्ठता लाने की कोशिश करते हैं तो वहीं दूसरी ओर हम बड़ी आसानी से यह भूल जाते हैं कि सीखना अत्यन्त व्यक्तिगत और व्यक्तिनिष्ठ अनुभव है। पर इस बात का उद्देश्य उन लक्ष्यों को नकारना नहीं है जिन्हें पाने के लिए बच्चों को विशेष आयु समूह में प्रयत्नशील होना चाहिए; वरन इस बात को उजागर करना है कि हर बच्चा इन लक्ष्यों को पाने के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाता है वह उसकी अपनी अनूठी यात्रा है और इसीलिए वह अत्यन्त व्यक्तिनिष्ठ है।

तो हर बच्चे के इस अनूठे आन्तरिक वातावरण का पोषण करना क्यों महत्त्वपूर्ण है? बच्चे के सीखने की प्रक्रिया में इसकी क्या भूमिका है और क्या इसे वास्तव में मुख्य धारा की स्कूली शिक्षा में लागू करना सम्भव है? ये कुछ ऐसे सवाल हैं जो ऊपर दिए हुए तर्क की वजह से सामान्य रूप से उत्पन्न होते हैं और आपके मन में भी उठे होंगे। आइए, एक–एक करके इन्हें सम्बोधित करें। चलिए, पहले यह समझने की कोशिश करें कि बच्चे का "आन्तरिक वातावरण" किन चीजों से बना होता है। योग दर्शन के अनुसार मन के चार कार्य माने जाते हैं:

मानसः सोचने और अनुभव करने वाला मन

चित्तः स्मृति, आदतों और पैटर्न्स का कार्य

अहंकारः भागीदारी एवं आत्म–अभिज्ञान

बुद्धिः विभेदक या उच्च रीति से सोचने वाला मन

हमने अपने अनुभवों में इन कार्यों को देखा होगा लेकिन हमें उनके योग विषयक नाम पता नहीं थे। हममें से अधिकांश लोगों ने जिस प्रकार की शिक्षा पाई है और आज जिस प्रकार की मुख्य धारा की शिक्षा प्रचलित है, अगर हम उसके बारे में सोचें तो पाएँगे कि ये पहली दो मन:शक्तियों पर ध्यान देती हैं। कुछ स्कूल हैं जो इनके परे जाकर यह प्रयास करते हैं कि वे विद्यार्थियों को गहन रूप से अपने खुद के सीखने में शामिल करें, उनके सीखने के हक को बाँटें और बच्चों में स्व के विकास में सहायता दें ताकि बच्चे अपने स्वयं के अधिगम से गहन रूप से जुड़ पाएँ। लेकिन ऐसे स्कूल बहुत कम हैं जो चौथे पहलू पर भी ध्यान देते हों यानि विद्यार्थियों में अपनी उच्च रीति से सोचने वाली चिन्तन क्षमताओं की सहायता से विवेक बुद्धि का निर्माण करना। अगर हम सचमुच हर बच्चे के अनूठेपन का पोषण करना चाहते हैं तो यह सुनिश्चित करना होगा कि पढ़ाते समय मन के चारों पहलुओं पर ध्यान दें। इनमें से चौथा पहलू यानि बुद्धि सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसके दो कारण हैं–पहला; इस पर ज्यादा काम नहीं हुआ है और शिक्षकों को यह समझना होगा कि अपने नियमित शिक्षण में विवेक का भाव कैसे निर्मित किया जाए और दूसरा; हम सिर्फ अपने अनुभवों से नहीं सीखते बल्कि अपने अनुभवों पर चिन्तन–मनन करने के द्वारा भी सीखते हैं। चिन्तन, विवेचन और निर्णय लेने की क्षमता से हमारी विवेक बुद्धि की योग्यता परिभाषित होती है और हमारे जीवन जीने की शैली के एक बड़े हिस्से का निर्माण होता है। जब बच्चे सीख रहे हों तब अगर यह सुनिश्चित किया जाए कि मन के चारों कार्य सक्रिय हैं तो हम उनके अस्तित्व के सभी पहलुओं –संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं शारीरिक– को उनके अधिगम के साथ सम्बद्ध कर पाएँगे; और इस प्रकार अधिगम के लिए एक सक्षम आन्तरिक वातावरण का निर्माण होगा।

हमारी मुख्यधारा की शिक्षा में विद्यार्थियों में इस प्रकार के सक्षम आन्तरिक वातावरण का निर्माण करना बहुत मुश्किल बात लगती है। इसके लिए निश्चित रूप से समय और प्रयत्न की आवश्यकता होगी लेकिन कुछ बेहद सरल बातें हैं जिनकी शुरुआत शिक्षक कर सकते हैं। इस दिशा में पहला कदम है विद्यार्थियों के ध्यान या दत्तचित्तता का प्रशिक्षण। ध्यान वह बुनियादी लैंस है जिसके माध्यम से हम अपने जीवन का अनुभव करते हैं। इसलिए अपने ध्यान पर काम करना केवल तनाव से मुक्ति पाने या एकाग्रता को सुधारने से कहीं बढ़कर है। हम जिस तरह से अपने आपको समझते हैं, अपना अनुभव करते हैं (आत्म छवि), दूसरों को और दुनिया को महसूस करते हैं–उसे यह बदल सकता है। ध्यान को प्रशिक्षित करने के लिए कई मूलभूत अभ्यास एवं सिद्धान्त हैं, जिनमें से कुछ विभिन्न विचारशील परम्पराओं से लिए गए हैं और इनमें से अधिकांश अभ्यास संज्ञानात्मक तन्त्रिका विज्ञान के वर्तमान शोध, साक्ष्य आधारित कक्षा शिक्षण शास्त्र, सामाजिक और भावनात्मक अधिगम के निर्देशों (SEL) एवं सकारात्मक मनोविज्ञान के मार्गदर्शक सिद्धान्तों के आधार हैं। इन शोधों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि किस प्रकार ध्यान का प्रशिक्षण करने से मस्तिष्क में संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं और इसके परिणाम स्वरूप लोगों में सकारात्मक परिवर्तन आता है। उदाहरण के लिए जिन लोगों ने अपने ध्यान–कौशल को विकसित किया था, उनके मस्तिष्क के वे हिस्से काफी मोटे थे जो आत्म–चिन्तन एवं समानुभूति से सम्बद्ध होते हैं। ये थे– anterior insula जो भीतरी स्थिति से सम्बद्ध है एवं Brodmann area 9/10, जो भावना एवं संज्ञान के एकीकरण से सम्बद्ध है।[1]

तो हम जिस आन्तरिक वातावरण की बात कर रहे हैं उसके निर्माण के लिए विद्यार्थियों के ध्यान को कैसे प्रशिक्षित किया जाए। विद्यार्थियों के भीतर इस महत्त्वपूर्ण क्षमता को विकसित करने के तीन चरण हैं जो क्रमानुसार आगे बढ़ते हैं और जिन्हें आसानी से स्कूल के कार्यक्रमों में समेकित किया जा सकता है:

पहला चरण : ध्यान स्थिर करना

पहला कदम है अपना ध्यान स्थिर करने में विद्यार्थियों की मदद की जाए ताकि वे जो कुछ कर रहे हैं वह उनके नियन्त्रण में आ जाए। इसे करने के लिए निम्नलिखित कार्य करने होंगे:

- ध्यान व एकाग्रता लाने वाली गतिविधियों से जुड़ना
- स्मृति का प्रशिक्षण
- रचनात्मकता को बढ़ावा देना एवं समस्याओं को सुलझाने की क्षमता का विकास करना

[1] Lazar SW, Kerr CE, Wasserman RH, Gray JR, Greve DN, Treadway MT, McGarvey M, Quinn BT, Dusek JA, Benson H, Rauch SL, Moore CI, Fischl B. Neuroreport. 2005 Nov 28;16(17):1893-7.

दूसरा चरण : भावनात्मक सन्तुलन की रचना

इस चरण में अपनी भावनाओं के साथ काम करना शामिल है–नकारात्मक भावनाओं का विसरण एवं मन की सकारात्मक स्थितियों को बढ़ाना। इसके लिए निम्नलिखित कार्य करने होंगे:

- भावनाओं को पहचानना/उनके बारे में जागरूक होना
- अन्तर्निहित पैटर्न्स देखना
- बेहतर विकल्पों को चुनना

तीसरा चरण : अपने अनूठे स्व की खोज

हर बच्चा दुनिया के साथ भागीदारी की अपनी निजी भावना के साथ जन्म लेता है; भावावेश की इस प्राकृतिक भावना को मन एवं भावनाओं को शान्त व सन्तुलित करने का बुनियादी काम करने के बाद पूर्ण अभिव्यक्ति तब मिलेगी जब:

- चिन्तन व विवेचन की सक्षमता का विकास होगा
- अपनी खुद की "पुकार" और जीवन के उद्देश्य की खोज होगी
- अपनी खुद की मूल ताकतों व प्रतिभा का पता चलेगा

ऊपरी संरचना केवल एक सांकेतिक रूपरेखा है जो यह बताती है कि विद्यार्थियों के साथ उनकी आत्मा के स्तर पर कैसे काम किया जा सकता है और उनके भीतर एक समर्थकारी आन्तरिक संस्कृति को कैसे बढ़ावा दिया जा सकता है। इस विषय के चारों ओर ऐसे कई अनुभवों, गतिविधियों एवं अभ्यासों को विकसित किया गया है जिन्हें मुख्यधारा वाले स्कूलों के पाठ्यक्रम के साथ समेकित किया जा सकता है। इनमें से कुछ अभ्यास Plum Village, The Hawn foundation & mind up curriculum जैसे संगठनों द्वारा सचेतनता पर आधारित अभ्यास हैं।

विद्यार्थियों के भीतर सफलतापूर्वक एक समर्थकारी आन्तरिक संस्कृति का निर्माण करने के लिए विद्यार्थियों के सीखने की प्रक्रिया में इसका महत्त्व समझने की जरूरत है और साथ ही स्कूल के पाठ्यक्रम में इसे पर्याप्त उपयुक्त स्थान देने की भी जरूरत है। इसके अलावा, यह भी लाजमी है कि शिक्षकों को इसके लिए तैयार किया जाए–इसलिए पहले उन्हें ऐसा प्रशिक्षण देना चाहिए जिससे उनमें ये क्षमताएँ निर्मित हों और बाद में वे उन कौशलों को हासिल करें जिनसे वे अपने विद्यार्थियों में इन्हें विकसित कर सकें। सबसे बढ़कर यह बात जरूरी है कि सभी शैक्षिक स्थान एक समुदाय के रूप में इस क्षेत्र में काम करने की गम्भीरता को समझें और इसे सम्भव बनाने की दिशा में प्रतिबद्ध हों।

प्रेरणा शिवपुरी टीचर फाउण्डेशन, बेंगलूरु में सीनियर कोऑर्डिनेटर–ट्रेनिंग एण्ड टीचर सपोर्ट, के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में शिक्षक शिक्षा टीम में काम किया है। एक प्रशिक्षक एवं शिक्षक के रूप में उन्होंने द हेरिटेज स्कूल व शिक्षान्तर, गुड़गाँव में काम किया। प्रेरणा पिछले बारह वर्षों से मुख्य रूप से "पूर्व प्राथमिक व प्राथमिक वर्ष" सम्बन्धी शिक्षा तथा शिक्षक–प्रशिक्षण के क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं। उन्होंने शिक्षा विषय में स्नातक की डिग्री पाई तथा Conflict transformation & Peace & building में डिप्लोमा किया है। उनसे prernashivpuri@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।



श्रीनिवासन को स्कूलों, कॉलेजों एवं कॉर्पोरेटों के लिए ध्यान–प्रशिक्षण, आत्म–जागरूकता, एवं मेडिटेशन कार्यक्रमों के पाठ्यक्रमों को डिजाइन और क्रियान्वित करने का आठ सालों का अनुभव है। उन्होंने बिहार स्कूल ऑफ योगा, शिवानन्द सेण्टर तथा Scandinavian योगा एण्ड मेडिटेशन स्कूल, स्वीडन, से योग एवं एडवांस्ड कंटेंप्लेटिव प्रैक्टिसेस का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। वे मनोविज्ञान के विद्यार्थी हैं तथा क्लीनिकल मनोविज्ञान में विशेषज्ञ हैं। सम्प्रति वे द केरल सेण्टर, मॉस्को, रूस में प्रशिक्षक हैं। उनसे write2sri.in@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** नलिनी रावल



एक नया दृष्टिकोण

सीखने में संवृद्धि के लिए

ई.एस.रामामूर्ति



शासकीय स्कूलों में प्राथमिक शिक्षा की हालत समय–समय पर एनुअल सर्वे ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट्स (ASER) में नियमित तौर पर उजागर होती रहती है। इनमें निकलकर आए कुछ तथ्य सच में चिन्ताजनक हैं – उदाहरण के लिए, कर्नाटक में कक्षा सात के 27 प्रतिशत विद्यार्थी पाठ्यपुस्तक से बाहर की सामान्य विषयवस्तु को अपनी ही भाषा में प्रवाह के साथ नहीं पढ़ पाते। इससे भी अधिक चिन्ता की बात है कि दक्षता सम्बन्धी इस तरह की कमियों को अगर इसी समय सम्बोधित नहीं किया जाता तो वे जीवन भर यूँ की यूँ बनी रहेंगी। शिक्षणा के माध्यम से सुनिश्चित करने की कोशिश हुई कि कोई भी विद्यार्थी पढ़ने, लिखने और अपनी भाषा में अभिव्यक्ति की तीन बुनियादी दक्षताएँ हासिल किए बिना प्राथमिक स्कूली शिक्षा न छोड़े। इसी के एक हिस्से के तौर पर शिक्षणा ने प्रवाह के साथ पढ़ने पर सबसे पहले ध्यान केन्द्रित किया। शिक्षणा एक नवाचारी दृष्टिकोण का प्रयोग करते हुए इस उद्देश्य की प्राप्ति के समीप आया। और यही इस लेख के केन्द्र में है। यह इस वजह से और भी अधिक दिलचस्प हो जाता है कि इसे एक अलग वातावरण में आसानी से लागू किया जा सकता है और प्राथमिक स्कूली शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी लागू किया जा सकता है।

शिक्षणा को इस बात का एहसास था कि ASER द्वारा रिपोर्ट की गई कमियाँ इस बात के बावजूद हैं कि शासकीय स्कूलों में शिक्षक हमेशा ही अपनी योग्यताओं और अनुभव के सन्दर्भ में इन कमियों का सामना करने के लिए अच्छे से लैस हैं। इन कमियों को विद्यार्थियों की अन्तर्निहित क्षमताओं और बुद्धि से जोड़कर भी नहीं देखा जा सकता क्योंकि कुछेक को छोड़कर उनमें से अधिकतर इतने लायक तो पाए ही जाते हैं कि इस खाते में असफल न हों।

आमतौर पर माना जाता है कि सीखने के दो रास्ते होते हैं – शिक्षण के माध्यम से ज्ञानार्जन और अभ्यास के माध्यम से एक दक्षता हासिल करना या उसे सुदृढ़ करना। इनमें से प्रथम तो शिक्षक के कार्यक्षेत्र में आता है, और दूसरा विद्यार्थी द्वारा की गई मेहनत पर निर्भर करता है। महसूस किया गया कि पढ़ने में रवानी हासिल करना दूसरी तरह की गतिविधि है और उसे इस बात को ध्यान में रखते हुए ही किया जाना चाहिए। इस दक्षता पर ध्यान केन्द्रित करते हुए शिक्षणा ने चुने गए कुछ स्कूलों के कन्नड़ शिक्षकों से सवाल–जवाब किए और इस बात की व्यावहारिकता के बारे में पता लगाने की कोशिश की कि क्या विद्यार्थी यह दक्षता एक तर्कसम्मत समय में हासिल कर सकते हैं? अगला कदम एक ऐसे व्यवस्थित प्रोग्राम को विकसित

[i] http://www.sikshana.org

करने का था, जिससे सुनिश्चित हो पाए कि विद्यार्थी प्रामाणिक आधार पर आवश्यक मेहनत कर पाएँ। इस प्रकार निम्नलिखित प्रक्रिया निकल कर आई –

शुरू में बच्चों को सशक्त सन्देश दिया गया कि कन्नड़ पढ़ना सीखने का यह उनके लिए अन्तिम मौका होगा क्योंकि इसके बाद स्कूली शिक्षा के दौरान उन्हें इस प्रकार के हस्तक्षेप की आशा नहीं रखनी चाहिए। लेकिन यदि वे कुछ समय के लिए स्वयं को इसके लिए प्रतिबद्ध करने को तैयार हों, तो वे यह महत्त्वपूर्ण जीवन–कौशल इस चरण में भी हासिल कर सकते हैं, जबकि इतने सालों की स्कूली शिक्षा के बावजूद यह उन्हें नहीं मिल पाया।

अभ्यास के सत्र, जब कभी भी सम्भव हो पाया, स्कूल–परिसर में ही चलाए गए। ये सत्र एक–एक घण्टे के थे और सप्ताह में छह दिन पाँच सप्ताह के लिए किए गए। बीच में किसी भी आधार पर किसी भी छुट्टी की अनुमति नहीं दी गई। समय और स्थान में भी बदलाव की अनुमति नहीं दी गई। पूरी व्यवस्था कड़े अनुशासन के तहत की गई और यही सफलता की कुंजी भी है।

इस व्यवस्था के तहत अपने साथ के बच्चों/समकक्षों की सहायता से सीखना किया जाता है न कि 'शिक्षक' से। वास्तव में तो इन सत्रों के दौरान परम्परागत अर्थ में कोई शिक्षण नहीं किया जाता। यह जानी–मानी बात है कि बच्चों को अपने समकक्षों के साथ किसी दक्षता का अभ्यास करना अच्छा लगता है; यह भी एक स्वीकार किया गया तथ्य है कि सीखना एक ऐसे सहायक तन्त्र के तहत बेहतर और अधिक प्रभावशाली होता है जहाँ किसी तरह का भय न हो। ये बातें प्रस्तावित सत्रों के आधार का काम करती हैं। सत्र इस प्रकार व्यवस्थित होते हैं –

सीखने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को एक अन्य ऐसे विद्यार्थी के साथ रखा जाता है जिसके पास पहले से ही वह दक्षता हो। एक साझा सहायक 15–20 विद्यार्थी जोड़ों पर निगरानी रखता है। प्रत्येक जोड़े को एक–सी उपयुक्त स्तर की पठन सामग्री दे दी जाती है। शिक्षार्थी से कहा जाता है कि वह इस सामग्री को पढ़ने की कोशिश करे। जहाँ कहीं भी वह रुकता है, मार्गदर्शक विद्यार्थी से आशा की जाती है कि वह उस शब्द को ऊँची ध्वनि में पढ़े। यह हस्तक्षेप शिक्षार्थी द्वारा किए गए पढ़ने के प्रयास के बाद होना चाहिए और अगर वह पढ़ न पाए तो इसमें उसके बाद 2/3 सेकेण्ड से अधिक देरी नहीं होनी चाहिए। समय में दी गई छूट यह सुनिश्चित करने के लिए दी जाती है कि शिक्षार्थी बार–बार असफल हो जाने से निराश न हो जाए और पठन की नियमित गति बनी रहे। सम्पूर्ण प्रक्रिया में तीन कदम शामिल होते हैं – पढ़ने का प्रयास, असफल हो जाने की हालत में सही शब्द का सुनना, और 'दृष्टिगत' अवलोकन के साथ अब उसे सही तरह से पढ़ना। इस प्रकार शिक्षार्थी इनके बीच की सम्बद्धता को मन में ला पाता है और निश्चित है कि यह कुछ देर के लिए तो रहेगी। यदि अभ्यास के सत्र बीच–बीच में होते रहते हैं तो मुश्किल शब्द इस हद तक बार–बार सामने आएँगे कि वे शिक्षार्थी के मन–मस्तिष्क में पक्के तौर पर अंकित हो जाएँ।

हमारी जाँच–पड़ताल से सामने आया कि बच्चे एक वयस्क की उपस्थिति में सुरक्षित और प्रेरित महसूस करते हैं, फिर वह चाहे एक प्रशिक्षित शिक्षक न भी हो। इसीलिए सत्रों के दौरान ऊपर दिए गए दिशा–निर्देशों का लागू होना सुनिश्चित कर पाने के लिए एक सहायक मुहैया रहता/रहती है। लेकिन उसके द्वारा प्रक्रिया में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा, विशेष तौर से एक शिक्षक की भूमिका में।

इस कार्य की अपेक्षित सफलता असल में बोधात्मक दक्षताओं की बजाए दृढ़ निश्चय, हिम्मत और कोशिश में जुटे रहने जैसी दक्षताओं के इर्द–गिर्द होती है। एक बार बच्चा स्वयं को ऊपर चर्चा में आई व्यवस्था के हवाले कर देता है तो उसका झुकाव सफलता की ओर होने लगता है; बाकी काम ऊपर बताए गए अभ्यास द्वारा कर दिया जाता है।

इन पूर्व धारणाओं को परीक्षण की कसौटी पर उतारने के लिए एक स्कूल में 13 विद्यार्थियों के साथ उदाहरणस्वरूप काम किया गया। ये वे बच्चे थे जिन्हें हम 'वंचित' बच्चे कह सकते हैं जिनमें दक्षताओं की कमी तो थी ही, साथ ही ये ऐसे बच्चे थे जो अकसर कक्षा में नहीं आते थे और सीखने–सिखाने में जिनकी कोई विशेष दिलचस्पी दिखाई नहीं देती थी। संक्षिप्त निर्देश दिए जाने के बाद 31 अगस्त से 5 अक्तूबर तक लगातार एक 30 दिन का कैम्प लगाया गया। इसी अवधि में तीन बड़े त्यौहारों की छुट्टियाँ भी आईं। बच्चों ने इतवारों को भी उपस्थित रहना तय किया जिस से यह 35 दिन का प्रोग्राम बन गया। यह 100 प्रतिशत उपस्थिति के साथ चला। बच्चे अप्रत्याशित जोश



दिखा रहे थे। पूरे प्रोग्राम के दौरान सक्षमता के उनके निरन्तर बढ़ते स्तर पर गर्व महसूस कर रहे थे। तयशुदा अवधि के अन्त पर उनमें से 10 ने ASER के तहत परिभाषित स्तर–2 की पठन–क्षमता हासिल कर ली, 2 अन्य ने और दो सप्ताह में यही क्षमता हासिल कर ली और पिछड़ने वाला बस एक ही बच्चा रह गया। 13 में से 12 की सफलता–दर ने हमें अक्तूबर/नवम्बर में 43 स्कूलों के साथ दूसरा दौर भी चलाने के लिए प्रोत्साहित किया। इस बार भी, बावजूद इसके कि पूरी प्रक्रिया सत्र के बीच की छुट्टियों में और तीन बड़े त्यौहारों के दौरान हुई, सभी केन्द्रों में उपस्थिति लगभग पूरी थी। 506 बच्चों ने भाग लिया जिनमें से 327 ने 65 प्रतिशत तक कार्यकुशलता से निर्धारित दक्षता हासिल कर ली। यह पहले प्रयोग में हासिल सफलता से कम था लेकिन फिर भी यह आँकड़ा शिक्षणा द्वारा प्राप्त 8 प्रतिशत छटनी दर के उस आँकड़े से महत्त्वपूर्ण तौर पर बेहतर था जो 2011–12 में 136 स्कूलों से 3789 बच्चों के साथ परम्परागत दृष्टिकोण के तहत हासिल हुआ था।

2012–13 के बाकी के समय में शिक्षणा के 220 से अधिक स्कूलों में कक्षा सात के बच्चों के लिए इस प्रोग्राम को कुछ परिवर्तनों के साथ आगे ले जाया गया। जो विद्यार्थी 30 दिनों के अन्त पर रवानी के मामले में कुछ पीछे रह गए लगते थे, उन्हें 15 दिन का अतिरिक्त समय दिया गया। इसके अलावा, जिनके पास वर्णमाला/शब्दों का न्यूनतम ज्ञान भी नहीं था, उन्हें शुरुआत में ही निकाल लिया गया और 30 दिन के योग्यता–कार्यक्रम को पूरा करने के लिए डाला गया – इसका ढाँचा मुख्य कार्यक्रम जैसा ही था और मकसद भी वांछित दक्षता को हासिल करना था। इस चरण में 7894 विद्यार्थियों ने भाग लिया, जिनमें से 7166 यानी 90.8 प्रतिशत कार्यकुशलता के निर्धारित स्तरों को हासिल कर पाए। यदि पहले से दक्षता प्राप्त कर चुके या अपनी अन्य पहलकदमियों के तहत हासिल करने वालों की संख्या एक साथ ली जाए तो शिक्षणा स्कूलों ने 96.9 प्रतिशत का आँकड़ा हासिल किया – यानी 18,471 में से 17904 विद्यार्थियों ने पठन से सम्बद्ध ASER के स्तर–2 की कसौटी को पास कर लिया। वैधता की इस भरपूर सफलता के आधार पर वर्तमान अकादमिक साल में कार्यक्रम को और फैलाते हुए शिक्षणा स्कूलों में इसे कक्षा सात के सब बच्चों के साथ किया जा रहा है।

कुछ बातें ध्यान में रखने लायक हैं। ASER मूल्यांकन के तहत प्रवाह के साथ पढ़ने की उपलब्धि से ही यह अर्थ नहीं निकलता कि पढ़े गए को समझ भी लिया गया है। लेकिन यह किसी भी समग्र पठन प्रोग्राम का अन्तिम लक्ष्य होता है। लेकिन पढ़ने में रवानी का होना इसके लिए एक पूर्व शर्त है और इसलिए इस दक्षता का ग्रहण किया जाना इस लक्ष्य की प्राप्ति की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम है – इस तथ्य को रिपोर्ट में पहचाना गया है।

संयोगवश शिक्षणा ने गणित में पूर्ण संख्याओं की सामान्य भाग कर पाने की दक्षता हासिल करने का बिल्कुल ऐसा ही एक और प्रोग्राम कई स्कूलों में चलाया था। यहाँ पर प्राप्त सफलता–दर पठन–प्रोग्राम में हासिल दर जैसी ही थी। इससे प्रकट होता है कि केवल पठन की लक्षित दक्षता ही महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि यह तो नियन्त्रित हालात में ज्ञानार्जन के स्तरों में संवर्द्धन के लिए बोधात्मक दक्षताओं से इतर दक्षताओं की भूमिका की बात है। इस प्रोग्राम की सफलता और सीखने की कुछ विशेष प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में उससे मिलने वाली अन्तर्दृष्टि से यह आशा बनती है कि उसका प्रयोग प्राथमिक स्कूली शिक्षा में कई तरह की दक्षताओं को हासिल करने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

ई.एस.रामामूर्ति उद्योग के क्षेत्र में लम्बे समय तक कार्यरत रहे हैं और प्रतिष्ठित स्थान रखते हैं। इस क्षेत्र में अपने कार्य के चरम पर पहुँचने के बावजूद उन्होंने इससे निकलकर शिक्षणा की स्थापना की, जिसके वे मुख्य पथप्रदर्शक हैं। कार्यक्रम का उद्देश्य शासकीय स्कूली व्यवस्था के लिए एक निरन्तर पोषणीय, टिकाऊ मॉडल विकसित करना है। उनसे esrmurthy@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवादः रमणीक मोहन



नली-कली: सीखने के लिए योग्य बनाना
क्या और अधिक किया जा सकता है?

नमिता गुप्ता

हम सबके मन में कक्षा के कमरे की एक छवि होती है। यह कैसी छवि है, यह निर्भर करता है इस बात पर कि हमें किस तरह पढ़ाया जाता था; इस पर, कि कक्षा के वे कमरे कैसे हैं जिनमें हमारे बच्चे अब पढ़ते हैं; या इस पर, कि वे कक्षा–कक्ष कैसे हैं जिनमें हम स्वयं पढ़ाते हैं? अधिकतर तो कक्षा के इस कमरे में 25 से 50 बच्चों के एक समूह से बात करता हुआ एक शिक्षक होता है, और बच्चे 'भाग्यशाली' हों तो एक ब्लैकबोर्ड, किताबें, वर्कशीट, दीवारों पर रंग–बिरंगे चार्ट तथा अन्य सामग्री होती हैं। सरकारी स्कूल का दृश्य भी कुछ ऐसा ही होने की आशा की जा सकती है, और आमतौर पर तो यह इससे भी अधिक नीरस और एकरस होता है। लेकिन कर्नाटक, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़ आदि जैसे प्रदेशों के सरकारी स्कूलों के निम्न प्राथमिक कक्षाओं के कमरों का दृश्य अब ऐसा नहीं है। उनमें बहुल–ग्रेड, बहु–स्तरीय गतिविधि आधारित शिक्षण प्रोग्राम चलता है जो कई अर्थों में मॉन्टेसरी दृष्टिकोण से मिलता–जुलता है।

कर्नाटक में इस प्रोग्राम को नली–कली कहा जाता है। यह लेख नली–कली के चार वर्ष के एक मूल्यांकन पर आधारित है जो संयुक्त तौर पर प्रोफेसर अनजिनि कोछड़, स्टैन्फोर्ड विश्वविद्यालय, कैटलिस्ट मैनेजमेन्ट सर्विसिज तथा अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन द्वारा किया गया। ह्यूलेट फाउण्डेशन और अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन ने इसके लिए धनराशि लगाई।

देश भर के शासकीय स्कूल कई तरह की चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। इनमें से एक शिक्षक–विद्यार्थी अनुपात की समस्या है। अब देश के सभी निम्न प्राथमिक स्कूलों के लिए एक शिक्षक पर 30 विद्यार्थियों का नियम है। यह भी नियम है कि बसाहट के प्रत्येक 1 किलोमीटर के घेरे में एक प्राथमिक स्कूल हो और एकल–शिक्षक स्कूल न हों। ये नियम मोटेतौर पर लागू तो हो जाते हैं लेकिन अजीब स्थितियाँ पैदा कर देते हैं। मसलन, बहुत से ग्रामीण प्राथमिक विद्यालय छोटे ही हैं, और उनमें इतने विद्यार्थी नहीं हैं कि प्रत्येक ग्रेड के लिए एक शिक्षक की आवश्यकता पड़े। इसलिए शिक्षकों को एक ही समय पर कई कक्षाएँ या ग्रेड पढ़ाने पड़ते हैं। कई बार अनुमोदित पद रिक्त भी रह जाते हैं या शिक्षक अनुपस्थित रहते हैं – इसीलिए बहु–ग्रेड शिक्षण आवश्यक भी हो जाता है। इसके अलावा विद्यार्थी भी सीखने के अलग–अलग स्तर पर खड़े दिखाई देते हैं।

यह चुनौती ग्रामीण या प्राथमिक शासकीय स्कूलों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह तो सीखने–सिखाने की प्रक्रिया की अन्तर्निहित विशेषता है। लेकिन यह समस्या कुछ विशेष समुदायों के उन बच्चों के लिए और भी अधिक गम्भीर हो सकती है जो सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक कारणों से नियमित नहीं रह पाते। उनके लम्बे समय के लिए कक्षा से अनुपस्थित रहने की सम्भावना होती है और जब वे वापिस लौटते हैं, तो कक्षा यदि बहुत आगे तक जा चुकी है तो वे खोया हुआ–सा महसूस करते हैं। बहुत से बच्चों और स्कूलों के पास अतिरिक्त मदद तथा पढ़ाई में बाकी सबके बराबर पहुँचने के लिए संसाधन नहीं होते और न ही नियमित उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए संसाधन होते हैं। इसलिए शिक्षकों को कई ग्रेड पढ़ाने के साथ–साथ कक्षा में भी कई विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखकर पढ़ाना होता है। अन्तिम बात यह कि बच्चे कई बार स्कूल से अलगाव महसूस करते हैं। यदि स्कूल अनजाना, अप्रासंगिक, मुश्किल या बोरियत भरा हो, तो विशेष तौर से पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले बच्चे जिन्होंने 'स्कूली शिक्षा' का विचार अभी पूरी तरह से 'अपनाया' न हो, शायद स्कूल जाना नहीं चाहेंगे।

अनुसन्धान और सिद्धान्त, दोनों इस ओर इशारा करते हैं कि बच्चे तब बेहतर सीखते हैं जब इसमें उनकी रुचि हो, वे व्यस्त हों और अपनी समझ को अधिक व्यवस्थित करने के लिए किसी गतिविधि में लगे हों।

कर्नाटक सरकार के नली–कली कार्यक्रम का उद्देश्य इन कई चुनौतियों से निपटने का है। यह प्रोग्राम 15 साल से भी अधिक हुए, पायलट आधार पर, प्रयोग की तरह शुरू हुआ था और ऋषि वैली द्वारा विकसित RIVER Method पर आधारित था। 2009–10 में इसे कन्नड़ माध्यम के सभी शासकीय प्राथमिक स्कूलों के ग्रेड 1 एवं 2 के लिए कर दिया गया। अगले साल यह ग्रेड–3 में भी आ गया।

नली–कली प्रोग्राम की कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं। सर्वप्रथम, विद्यार्थियों को अलग–अलग ग्रेड में विभाजित नहीं किया जाता। ग्रेड 1, 2 तथा 3 के सभी विद्यार्थी एक शिक्षक के साथ एक ही कक्षा में बैठते हैं। दूसरा, विद्यार्थियों के पास छूट होती है कि वे अपनी गति से सीख पाएँ। एक ग्रेड की सम्पूर्ण पाठ्यचर्या को छोटे–छोटे चरणों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक चरण के साथ कुछ विशेष गतिविधियाँ सम्बद्ध रहती हैं। विद्यार्थी इन गतिविधियों के माध्यम से विषयवस्तु को सीखते–समझते हैं और चरण को पूरा करते हुए सीढ़ी चढ़ते जाते हैं। तीसरे, विद्यार्थियों को समूहों में व्यवस्थित कर दिया जाता है। किसी एक समय पर एक कक्षा में 5 समूह हो सकते हैं, और ये समूह समकक्षों द्वारा आपस में सीख पाने के हिसाब से बनाए जाते हैं। शिक्षक एक या दो समूहों के साथ कार्य करता है। अन्य समूहों में विद्यार्थी या तो सीखने के लिए एक–दूसरे का सहयोग करते हैं या अपने वर्तमान स्तर को मूल्यांकित करने के लिए स्वतन्त्र तौर पर काम करते हैं। एक–दूसरे से सीखने वाले समूह के विद्यार्थी सीढ़ी के अलग–अलग पायदान पर हो सकते हैं। मगर वे सब एक साझा केन्द्रीय विषय या विषयवस्तु पर काम करते हैं। प्रत्येक बच्चा अलग–अलग गतिविधियाँ करता है और वे उसके विशेष स्तर और ग्रेड के मुताबिक होती हैं। चौथे, शिक्षा पद्धति के केन्द्र में करते हुए सीखना होता है। नली–कली की कक्षा में पाठ्यपुस्तकों की बहुत ही कम भूमिका रहती है और उनका प्रयोग मूल रूप से पढ़ने का अभ्यास और दुहराव के लिए ही होता है। गतिविधियों की व्याख्या कार्डों पर होती है और ये सीढ़ी के प्रत्येक कदम से सम्बद्ध होती हैं। विद्यार्थियों से आशा की जाती है कि वे गतिविधियाँ करने में स्वयं ही पहलकदमी लें।

हमने नली–कली प्रोग्राम पर इस मूल्यांकन के लिए चार साल अनुसन्धान किया कि वह बच्चों के सीखने में बेहतरी के लिए कितना प्रभावी रहा है। हमने सामाजिक दक्षताओं, सम्प्रेषण, नेतृत्व सम्बन्धी दक्षताओं आदि जैसे गैर–बोधात्मक परिणामों को भी देखा और कक्षाओं में हुई उन प्रक्रियाओं का भी अध्ययन किया जिनसे ये परिणाम निकलते हैं। इस प्रोग्राम के बारे में शिक्षकों की समझ का मूल्यांकन भी किया। परिणामों से पता चलता है कि



नली–कली का जाँच में आए अंकों के बढ़ने पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव है – विशेष तौर से भाषा में। नीचे के ग्रेडों के लिए यह प्रभाव अधिक है, जब वे नली–कली की कक्षाओं में होते हैं, और यह नीचे के स्तर की योग्यताएँ हासिल किए जाने से चालित होता है। लेकिन बच्चे जब उच्च ग्रेड में होते हैं तो पिछले ग्रेडों में सीखी गई बातें ही सीख रहे होते हैं। इसके साथ ही नेतृत्वकारी दक्षताओं पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इन स्कूलों में पढ़ रहे बच्चों के सीखने के निम्न स्तरों के सन्दर्भ में यह विशेष तौर से सकारात्मक परिणाम है। कक्षा–अवलोकन और शिक्षकों के साथ बातचीत से प्रकट होता है कि मूलतः जिन चीजों की आवश्यकता है वे स्कूलों में मौजूद हैं। इसका अर्थ है कि शिक्षकों और बच्चों ने कक्षा को नए ढंग से व्यवस्थित करने के तरीके और शिक्षक–विद्यार्थी सम्बन्ध में आने वाले बदलाव के मुताबिक स्वयं को ढाल लिया है। विद्यार्थी स्वयं को अपने वर्तमान स्तर में स्थित करने, कक्षा में की जाने वाली अपनी गतिविधि को चिह्नित करने और अपने समूह में शामिल होने में सहज महसूस करते हैं। इससे संकेत मिलता है कि सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को एक तरह से अपना लिया गया है – और यह भी कि वे स्वयं को उसमें शामिल महसूस करते हैं। शिक्षक भी इस प्रोग्राम के बारे में आमतौर पर जानकारी का उच्च स्तर दर्शाते हैं। उसके मुख्य पहलुओं की जानकारी उन्हें है और यह भी कि वह कैसे चलता है। लेकिन नली–कली प्रोग्राम में शिक्षक की सीमित ही भूमिका है। उन्हें एक या दो समूहों के साथ ही अन्तरंग तरीके से काम करना होता है। अन्य समूहों के काम पर तो एक व्यापक निगाह ही रखनी होती है। उन्हें अब विद्यार्थियों के लिए पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु के मध्यस्थ का काम नहीं करना होता क्योंकि आशा की जाती है कि गतिविधियाँ तो विद्यार्थियों द्वारा ही चलाई जानी हैं। इसका अर्थ है कि शिक्षक और विद्यार्थी के आमने–सामने होने का समय बहुत कम ही रहता है। इस 'घाटे' को अपने साथियों से सीखने और स्वयं सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से पूरा किया जाता है। लेकिन हमारे अनुसन्धान से जानकारी मिलती है कि 'एक–दूसरे से सीखने वाले' समूहों में से 20 प्रतिशत समूहों में विद्यार्थी बहुत ही कम परस्पर क्रिया में रहते हैं। यदि वे एक–दूसरे से बात भी नहीं करते तो क्या वे एक–दूसरे से सीख सकते हैं? यह भी स्पष्ट नहीं है कि किस प्रकार सामग्री और शिक्षक–प्रशिक्षण को सहायक बनाने के लिए उस पर नए ढंग से विचार किया गया है जबकि यह एक उच्च कोटि की दक्षता है। लगता है कि नली–कली के केन्द्र में अपनी गति से सीखने और एक–दूसरे से सीखने के विचार को सैद्धान्तिक स्वरूप देने का काम अपेक्षा से कम ही हो पाया है। प्रोग्राम में निहित कुछ अन्तर्द्वंद्व भी हैं। यह विद्यार्थियों को अपनी गति से सीखने की गुंजाइश देता है, मगर इस शर्त पर कि वे सब अन्तिम छोर पर एक साथ, एक ही समय पर पहुँचें।

यह हमें इस बहुत ही महत्त्वपूर्ण सवाल पर ले आता है कि नली–कली बच्चों को किस बात के काबिल बना रहा है? स्कूल में एक खुला माहौल होना जिसमें शोर मचाने पर दण्ड न दिया जाए और जो मित्रों के साथ काम करने को प्रोत्साहित करता हो, अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। विद्यार्थी भाषा और गणित में पहले तीन सालों में बुनियादी योग्यताएँ हासिल कर रहे हैं। लेकिन नली–कली विद्यार्थियों को ग्रेड 4 और 5 के परम्परागत कक्षा–कक्षों में सीखने के लिए पर्याप्त तौर पर सक्षम नहीं बनाता। इससे पहले कि नली–कली में छुपी सभी सम्भावनाओं को टटोला जा सके, नली–कली के कक्षा–कक्ष में शिक्षक की भूमिका के बारे में अधिक गहराई से सोचने की आवश्यकता है, और उस सामग्री के बारे में भी, जिसकी आवश्यकता उसे इस भूमिका को प्रभावशाली तरीके से निभाने के लिए होगी।

सार

कर्नाटक में नली–कली प्रोग्राम गतिविधि–आधारित और बहु–ग्रेड तथा बहु–स्तरीय है। विद्यार्थी अपने सीखने के स्वयं मालिक हैं और अपनी गति से काम करते हैं। उपलब्धि में बढ़ोत्तरी तो है मगर सीमित ही है। एक–दूसरे से सीखना पर्याप्त ढंग से नहीं हो रहा और न ही यह स्पष्ट है कि यह कैसे किया जाना है।

नमिता गुप्ता अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र, शिक्षा नीति और अनुसन्धान पढ़ाती हैं। वे प्रारम्भिक बाल शिक्षा, एम.जी.एम.एल. तथा शिक्षा में हिस्सेदारी के कारकों जैसे नीति–आधारित मुद्दों पर बड़े स्तर के अनुसन्धान में शामिल रही हैं। उनसे namita@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** रमणीक मोहन



स्कूलों में समर्थ वातावरण बनाना
उषा अस्वथ अय्यर के साथ बातचीत

निवेदिता बेदादुर



सुश्री उषा अस्वथ अय्यर भुवनेश्वर की उपायुक्त एवं जोनल इन्स्टिट्यूट ऑफ एजुकेशन एण्ड ट्रेनिंग, भुवनेश्वर की निदेशक हैं। पी.जी.टी, प्राचार्य तथा टीचर एजुकेटर के तौर पर काम करने का उनका लम्बा अनुभव है। मॉस्को के केन्द्रीय विद्यालय में उन्हें अफ्रीका से दक्षिण पूर्वी एशिया तक के कई देशों के मिश्रित क्षमता वाले विद्यार्थी–समूहों को पढ़ाने का अनुभव रहा। केन्द्रीय विद्यालय, कालीकट तथा वायु सेना स्टेशन, लोहेगाँव के केन्द्रीय विद्यालय नम्बर 2 में प्राचार्य के तौर पर उन्होंने समावेशी प्रथाएँ लागू करते हुए मार्गदर्शी कार्य किया।

निवेदिता : विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए सहायक वातावरण बनाने के सम्बन्ध में आपका क्या अनुभव रहा है? एक शिक्षक और प्राचार्य के तौर पर ऐसा बेहतर ढंग से कर पाने के लिए क्या कोई जानकारी/प्रशिक्षण/नीति है जिसकी आवश्यकता आपको लगती है?

उषा : जिन स्कूलों में मैंने काम किया है, उनमें विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों की संख्या बहुत ही कम रही है। अपने पेशे के शुरुआती दिनों में मेरे प्रयास यहाँ तक ही सीमित थे कि मैं अपनी सामान्य बुद्धि का प्रयोग करते हुए उनके भौतिक वातावरण से सम्बद्ध कुछ समस्याओं को हल करूँ। शिक्षकों या प्रशासनिक कर्मियों के लिए इससे सम्बद्ध कोई स्थापित प्रशिक्षण नहीं है। आवश्यक है कि शिक्षक और प्राचार्यों के साथ–साथ अभिभावक भी विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति संवेदनशील हों और इस सम्बन्ध में परामर्श से लैस हों ताकि वे जीवन और ज्ञान की खोज के पथ पर अग्रसर प्रसन्नचित्त बच्चे बन पाएँ।

निवेदिता : मुझे लगता है कि बच्चे के रूप में हम सबको किसी न किसी बात में बहुत–सी मदद की आवश्यकता रहती है। स्कूल में मैं गणित से इतना भयभीत रहती थी कि मुझे लगता था मैं कभी भी गणित का कोई सवाल नहीं कर पाऊँगी।

उषा : मैं भी। मगर एक शिक्षक या प्राचार्य के तौर पर क्या हम इस बारे में सोचते भी हैं? मुझे विशेष तौर से तब बहुत बुरा लगता है जब स्कूल की जाँच के दौरान किसी बच्चे द्वारा उत्तर न दे पाने की स्थिति में शिक्षक इस बात को यह कहकर टाल देता है कि "यह धीमी गति से सीखने वाला/वाली विद्यार्थी है।" हैरत की बात है – या शायद यह इतनी हैरत की बात न भी हो – कि कक्षा दो के विद्यार्थी भी जानते हैं कि धीमी गति से सीखने वाला कौन होता है! कोई भी शिक्षक इसे अपना दायित्व नहीं समझता कि बच्चे को जवाब देने में मदद की जाए। कक्षा में शिक्षक एक अभिभावक की तरह होता है। जिस प्रकार

माता–पिता किसी भी नुक्ताचीनी, दुष्प्रयोग या हमले से अपने बच्चे को बचाते हैं, एक शिक्षक को भी सहज प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए बच्चे को समस्या हल करने के लिए हर मौका देना चाहिए।

निवेदिता : सहायक वातावरण बनाने में मूलभूत ढाँचा क्या भूमिका निभाता है?

उषा : मूलभूत ढाँचा यकीनन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अधिकतर स्कूलों में बैठने की व्यवस्था की समस्या है क्योंकि फर्नीचर भारी है और सुविधाजनक नहीं है। सभी जगह सभी कक्षाओं के लिए एक ही तरह का फर्नीचर बनाने की कोशिशें विभिन्न आयु–समूहों, विषयों या मौसम की अलग–अलग माँगों को ध्यान में नहीं रखतीं। लेकिन मूलभूत ढाँचा भावनात्मक सम्बन्धों और सामान्य बुद्धि का स्थान भी नहीं ले सकता।

मुझे एक शिक्षक की याद है जिसने ब्लैकबोर्ड के पास एक दरी बिछा दी, एक तार बाँधकर कामचलाऊ पुस्तकालय के तौर पर कुछ पत्रिकाएँ और किताबें उस पर टाँग दीं और विद्यार्थियों को उन्हें खाली समय में प्रयोग करने की छूट दे दी। यह कक्षा दो की बात है जिसमें करीब 6–7 साल के बच्चे थे। एक बार निगरानी के लिए अपने दौरे में मैं यह देखकर हैरान रह गई कि शिक्षक के कक्षा में न होने के बावजूद यह कक्षा अपने किसी काम में जुटी हुई थी। दो विद्यार्थी दो अन्य सीखने वालों को पढ़ाई में मदद कर रहे थे।

शिक्षक के तौर पर मेरे अनुभव में मुझे आशुतोष याद आता है जो विज्ञान की धारा से मेरे कुछ बहुत अच्छे विद्यार्थियों में था। उसकी टांगें कमजोर थीं और उनके सहारे के लिए वह कैलिपर पहनता था जिसकी वजह से उसका इधर–उधर चलना–फिरना बहुत कठिन था। लेकिन वह जोश से भरा रहता था और ब्लैकबोर्ड पर लिखना चाहता था, कक्षा में हिस्सेदारी करना चाहता था। हममें से अधिकतर उसका उत्साह बढ़ाते थे। एक दिन, इन्स्पेक्शन के दौरान, उसने कक्षा में बैठे–बैठे ही उत्तर दिया। इन्स्पेक्टर बहुत नाराज हुआ। उसने इसके बारे में कक्षा में भी टिप्पणी की और मेरी निरीक्षण रिपोर्ट में भी इस बात को दर्ज किया। मैं इतना अटपटा महसूस कर रही थी कि उसे यह भी न बता पाई कि आशुतोष शारीरिक तौर पर चुनौती का सामना कर रहा है और इसलिए आसानी से खड़ा भी नहीं हो सकता।

निवेदिता : आपके विचार से इनमें से क्या है जो एक सहायक वातावरण बनाने में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण/सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण है – प्रत्येक बच्चे का आदर करना और उसे महत्त्व देना, बच्चों को सुनना, और सीखना तथा खुलापन?

उषा : प्रत्येक बच्चे का आदर करना और उसे महत्त्व देना। मुझे लगता है कि यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यही सबसे चुनौतीपूर्ण भी है क्योंकि लोगों को यह विश्लेषण करना होगा कि वे अपने से अलग बच्चों/लोगों के साथ अलग तरह का व्यवहार क्यों करते हैं – क्या यह सामाजिक या आर्थिक तबके में अन्तर की वजह से है या क्षमताओं में अन्तर की वजह से? हमारे व्यवहार की गहरी सांस्कृतिक जड़ें हैं। यह निश्चित तौर पर एक चुनौती है कि हम सामाजिक जीवों के तौर पर जो दुराग्रह पाल लेते हैं, उन्हें खुलेपन से परिवर्तित कर पाएँ। लेकिन दिल को खुश करने वाले क्षण भी आए हैं जब लगा कि परिवर्तन हो रहा है।

मेरे एक स्कूल में एक शिक्षिका ने कम गति से सीखने वालों को बाकी की कक्षा के बराबर लाने का अपना ही एक तरीका निकाला। 4–5 ऐसे विद्यार्थी थे जो कक्षा पाँच तक पहुँच तो गए थे मगर उन्हें अँग्रेजी बिल्कुल नहीं आती थी। शिक्षिका इस बात से बहुत दुखी थी कि वह अपनी कोई बात उन तक पहुँचा नहीं पाती थी। फिर उसे विचार आया कि वह कक्षा एक की पाठ्यपुस्तकों से शुरुआत करे। उसके बाद उसने उन्हें कक्षा दो और तीन के लिए भी मार्गदर्शित किया। उनमें आया परिवर्तन किसी करिश्मे से कम न था। "तुम क्यों नहीं कर सकते?" सुनने के बाद उन्हें यह सुनकर हैरत हुई – "तुमने कर दिखाया!" बच्चों को सुनो और सीखो – दृष्टिकोण में यह बदलाव लाना भी बहुत मुश्किल है, क्योंकि अधिकतर वयस्क समझते हैं कि उन्हें तो सब कुछ पता है और बच्चों को तो बस कुछ करने के लिए आदेश ही देना है। आमतौर पर हम विद्यार्थियों को सवाल पूछने की छूट कभी नहीं देते। मुझे कक्षा नौ के बच्चों के साथ एक कक्षा में हुआ आदान–प्रदान याद है। उन्होंने राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं के बारे में जो प्रश्न पूछे, वे हैरत में डालने वाले थे। परिवार में यदि एकमात्र सन्तान लड़की हो तो केन्द्रीय विद्यालयों में उसे बिना शुल्क शिक्षा दिए जाने की नीति है। मुझे याद है कि एक लड़के ने मुझसे कहा कि एकमात्र बालिका को बिना शुल्क शिक्षा देने की नीति की बजाए बेहतर होगा कि कई लड़कों वाले परिवार में एक ही लड़की है तो नीति बने कि उसके साथ लड़कों के मुकाबले बेहतर व्यवहार हो। उसने कहा कि यदि परिवार में एक ही बच्चा हो, फिर वह चाहे लड़की ही क्यों न हो, तो उसके साथ तो आमतौर पर बेहतर व्यवहार किया ही जाता है क्योंकि उसके साथ तुलना करने को कोई अन्य बच्चा है ही नहीं।

निवेदिता : दस साल से भी अधिक समय तक प्राचार्य के तौर पर आपके कार्यकाल में आपने शिक्षकों में दृष्टिकोण–बदलाव सम्बन्धी कई कदम उठाए हैं और धीरे–धीरे पूर्वाग्रह को प्रशंसा में तब्दील किया है। उनमें से कुछ अनुभव हमारे साथ साझा कीजिए।

उषा : क्या आपको केन्द्रीय विद्यालय वायु सेना स्टेशन–2, पुणे का अभय याद है? उस समय वह कक्षा पाँच में था और मैं अपने नियमित कक्षा–निरीक्षण पर थी। अँग्रेजी की कक्षा चल रही थी। शिक्षक ने सवाल पूछे और उन्हीं विद्यार्थियों ने जवाब दिए जो आमतौर पर दिया करते थे। एक बार अभय ने जवाब देने के लिए हाथ उठाया। उसने सही जवाब दिया, लेकिन हिन्दी में। सवाल था – आप गर्मी के दिन में स्वयं को राहत पहुँचाने के लिए क्या करते हैं? ए.सी. चलाना, तैराकी करना, पंखे या कूलर में बैठना जैसे आमतौर पर मिले उत्तरों में उसका उत्तर था – "डुबकी लगाना।" अभय गरीबी की पृष्ठभूमि से था – झोपड़पट्टी जैसे इलाके से। उसके लिए पानी का कोई भी ताल गर्मी से राहत पाने का एक अच्छा तरीका था। और यह हमारे बहुत से बच्चों के लिए सही है। कितने हैं जो असल में स्विमिंग पूल का प्रयोग करते हैं? लेकिन शिक्षक ने बहुत ही रूखे स्वर में कहा – चुप रहो! मुझे हस्तक्षेप करना पड़ा। मेरी प्रशंसा ने उसे और कई उत्तर देने के लिए प्रोत्साहित किया। उसके द्वारा दिए गए एक और उत्तर – "आइस का गोला" – को भी मैंने गर्मजोशी से स्वीकारा। उसके बाद अभय हमारे प्रिय विद्यार्थियों में से एक हो गया।

प्राचार्य बनने के बाद ही मुझे एहसास हुआ कि शारीरिक चुनौती का सामना कर रहे विद्यार्थियों की कुछ विशेष आवश्यकताएँ होती हैं जिनके बारे में हम तुरन्त ध्यान नहीं करते। कक्षा दस में एक छात्रा थी जो सुनने की शक्ति से वंचित थी। वह सुनने के लिए किसी सहायक यन्त्र का प्रयोग भी नहीं करती थी। कारण था कि दो कक्षाएँ लगने के बीच के समयकाल में विद्यार्थियों द्वारा मचाया जाने वाला शोर उस यन्त्र की वजह से उसे बहुत अधिक बढ़े हुए स्वर में सुनाई देता था और वह उसके लिए असहनीय होता था। वह शिक्षक द्वारा कही जा रही बात को उसके होंठों की हरकत से भी नहीं समझ पाती थी। मैंने इस बाबत उसके शिक्षकों से चर्चा की और हमने उसे लिखित नोट्स देने का निर्णय लिया जिन्हें वह अपनी कॉपी पर उतार सकती थी। हमने उसके लिए कुछ वर्कशीट भी तैयार कीं।

इसी प्रकार कालीकट में एक लड़की की बात है। वह स्वयं नहीं चल पाती थी। मुझे यह समझने में करीब एक साल



लग गया कि वह विद्यार्थियों के लिए बने सामान्य शौचालय का प्रयोग नहीं कर पाती। मैंने किसी तरह सी.पी.डब्ल्यू.डी. से सम्पर्क किया और विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए शौचालय बनवाए – यह काम विद्यालय प्रबन्धन कमेटी की सहायता के चलते थोड़े ही समय में हो गया।

निवेदिता : एक सहायक वातावरण तैयार करने में आप एक शिक्षक, प्राचार्य और एक टीचर–एजुकेटर की भूमिका में क्या अन्तर देखती हैं?

उषा : एक शिक्षक के तौर पर मैं सब विद्यार्थियों की सहायता कर पाई। मेरा मैत्रीपूर्ण व्यवहार उन्हें आमतौर पर मेरे साथ सहज महसूस करने में सहायक था। मेरे विचार से मैंने उनके लिए कुछ अलग नहीं किया, न ही कुछ विशेष किया। प्राचार्य के तौर पर मैं भौतिक वातावरण में आवश्यक परिवर्तनों के बारे में आसानी से निर्णय ले सकती थी, फिर वह चाहे कक्षा का कमरा बदलने की बात हो, विशेष शौचालयों के निर्माण की या पैरों के अधरंग से पीड़ित एक विद्यार्थी के लिए किताबें ले जाने की बात, क्योंकि वह स्वयं पुस्तकालय जाने में सक्षम नहीं था। टीचर–एजुकेटर के तौर पर मैंने कार्यशालाओं और स्कूलों में जाकर जागरूकता फैलाई। लेकिन नीति तैयार करने पर मेरा कोई अधिकार या नियन्त्रण नहीं है।

निवेदिता : समुदाय के साथ सम्बन्ध के अभाव में सब बच्चों को हमेशा एक सहायक वातावरण प्रदान किया जा सकता है या नहीं – क्या हिंसा, दुर्व्यवहार और उपेक्षा की घटनाएँ आपको यह सोचने की ओर ले गईं?

उषा : हाँ, मुझे कक्षा नौ का वह लड़का याद है जिसमें कक्षा छह के किसी बच्चे वाली मासूमियत थी। वह सेरेब्रल पाल्सी (प्रमस्तिष्क पक्षाघात) का शिकार था, इसलिए उसकी चाल में स्थिरता नहीं थी और वह बैठता भी अजीब ढंग से था। मैंने पाया कि उसका शिक्षक उसे दण्डित करता रहा था। कहने को तो यह बच्चे के बैठने के तरीके को बेहतर करने के लिए था! शिक्षक मेरे क्रोध को सच में समझ ही नहीं पाया – उसे तो बस यह समझ में आ रहा था कि ऐसा करने पर उसके अभिभावक बहुत गुस्सा होंगे और इसके चलते उसकी नौकरी जा सकती है। लेकिन क्या गारण्टी थी कि वह अन्य बच्चों को दण्डित नहीं करता रहेगा? और क्या गारण्टी थी कि यह बच्चा अन्य लोगों से ऐसे ही व्यवहार का सामना नहीं करेगा?

निवेदिता : अगर आपके पास स्कूल में अधिक सहायक वातावरण बनाने के लिए बेहतरी लाने का अधिकार हो तो आप किस नीति में बेहतरी लाना चाहेंगी?

उषा : शिक्षा की नीतियों में शिक्षा के विभिन्न हितधारकों की आवश्यकताओं, तौर–तरीकों और जागरूकता हेतु उठाए जाने वाले कदम स्पष्ट तौर पर दिखाई देने चाहिए। विशेष आवश्यकताओं वाले विद्यार्थियों की कठिनाइयों और समस्याओं पर नियमित चर्चाएँ होनी चाहिए और उनसे निपटने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। बी.एड. में स्पेशल एजुकेटर्स पर एक विशेष भाग होना चाहिए। प्रत्येक स्कूल में स्पेशल एजुकेटर्स का एक पद होना चाहिए जिससे शिक्षक ऐसे विद्यार्थियों के लिए आवश्यक मदद बाबत जागरूक हो पाएँ।

विद्यार्थी काउंसिल, वी.एम.सी. और पी.टी.ए. आदि में विद्यार्थियों का प्रतिनिधित्व हो तो उनकी बात सुनी जा सकेगी। मुझे आशा है कि मूल्य–आधारित शिक्षा, धर्म, महान नेताओं के उदाहरण आदि से विद्यार्थियों पर प्रभाव पड़ेगा। माता–पिता, शिक्षकों और बच्चों में यह जागरूकता पैदा करने की भी आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्ति की अद्वितीयता का आदर किया जाए। साथ ही आधुनिक दुनिया में दरकार दक्षताओं और प्रतिभाओं के बारे में भी जागरूकता हो।

मैं एक ऐसी नीति का स्वागत करूँगी जिसके तहत रिपोर्ट कार्ड तो बस मौखिक ही हों। वे प्रत्येक बच्चे की सकारात्मक बातों की ही बात करें; और उनमें अंक देने की बात न हो क्योंकि इससे तो तुलना और कमतरी की भावना जन्म लेती है – फिर वह चाहे घर में हो या स्कूल में या सम्पूर्ण समाज में।

(निजता की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए लेख में बच्चों के नाम बदल दिए गए हैं।)

निवेदिता बेदादुर अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में अकादमिक विषयों एवं शिक्षाशास्त्र की विशेषज्ञ हैं। वे केन्द्रीय विद्यालय संगठन में शिक्षक और प्रिंसिपल के तौर पर उषा अय्यर के काम के साथ करीब से सम्बद्ध रही हैं। इस सम्बन्ध से जुड़ी कई यादें हैं जो स्कूलों में सहायक वातावरण बनाने के काम से सम्बद्ध हैं।
अनुवादः रमणीक मोहन



रवैये में परिवर्तन

अरुणा वी. प्रसाद

> **“अन्य लोगों की हर वह बात जिससे हम खीझते हैं, हमें स्वयं को समझने की ओर ले जा सकती है।”**
>
> \- कार्ल जुंग

जुंग के कथन पर जाएँ तो लगता है कि जीवन हमें एक से अधिक तरह से चुनौती देता है और हमें स्वयं पर सोचने–विचारने का मौका भी। इस बात को कुछ गहराई में समझने के मकसद से एक उदाहरण लेते हैं।

अगस्त 2012 में रुद्रपुर,उत्तराखण्ड के अज़ीम प्रेमजी स्कूल में एक 9 वर्षीय बच्ची 15 वयस्कों के जीवन में चली आई। स्कूल में प्रवेश के समय उसके संक्षिप्त परिचय में निम्न दो बातें शामिल थीं –

- स्कूल और उसकी आवश्यकताओं तथा माँगों के बारे में बहुत ही कम समझ और चेतना।
- चिकित्सकीय तौर पर कम स्तर की बुद्धिलब्धि (आइ. क्यू) वाले बच्चे के रूप में पहचान।

उसे ‘शिक्षा का अधिकार’ से सम्बद्ध मानकों के आधार पर स्कूल में लिया गया था। शीघ्र ही सबको एहसास होने लगा कि

- नियमों, अपेक्षाओं और नित्यचर्या का उसके लिए कुछ महत्त्व नहीं था।
- वह शैक्षणिक रूप में ही नहीं, समाज और व्यवहार के स्तर पर भी चुनौती की अवस्था में रहती थी।
- अपने समकक्षों के साथ व्यवहार में वह सुसंस्कृत और परिष्कृत नहीं थी।
- वह उच्च आवेग में रहती थी।
- कभी–कभी आक्रामक हो जाती थी।
- एक स्थान पर नहीं बैठ सकती थी।
- औरों से वस्तुएँ छीनती थी।
- कहीं भी लेट जाती थी और शौच के लिए पूरी तरह से प्रशिक्षित नहीं थी।
- बार–बार निर्देश दिए जाने पर ही उन्हें याद रख पाती और समझ पाती थी।

मैं सोच में पड़ गई। क्या वयस्क के तौर पर हम जानते हैं कि वह क्या है जिसकी आवश्यकता कुछ भी (अकादमिक) ‘सीखने’ के लिए होती है? यह विचार मेरे मन में इसलिए आया क्योंकि हम बच्चे के विकास के चरणों को पहले से मानकर चलते हैं। जिन बच्चों को सीखने में समय लगता है या जिनमें अलग तरह की क्षमताएँ होती हैं, उनसे कैसा व्यवहार किया जाए, उन्हें कैसे सम्भाला जाए, यह हमारी समझ में नहीं आता। कोई बच्चा बाकी सबसे अलग हो तो हम क्या करें? क्या हम ऐसे तरीकों से शिक्षण कर सकते हैं कि वह सीख पाए? उसे वह सब मुहैया करवा सकते हैं जिससे वह स्वतन्त्र महसूस कर पाए?

यह स्वाभाविक–सी बात लगती है कि प्रत्येक स्कूल में एक विशेषज्ञ–शिक्षक हो। लेकिन असलियत इससे कोसों दूर है। ‘सामान्य’ बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षकों से ही आशा की जाती है कि वे ‘विशेष आवश्यकताओं’ वाले बच्चों को भी पढ़ाएँ जबकि यह तो हम समझ ही सकते हैं कि उनमें ऐसा कर पाने की विशेषज्ञता नहीं होती। बल्कि ऐसे बच्चों के साथ व्यवहार के सन्दर्भ में इन शिक्षकों के रवैये को ध्यान में रखें तो हम देखते हैं कि वे समझ ही नहीं पाते कि उन्हें क्या करना है। और इस बात में वे किसी भी अन्य वयस्क से अलग नहीं हैं। यह इसलिए भी केन्द्र में आ जाता है कि उनका ‘पेशा’ उनसे माँग रखता है कि वे सबको पढ़ाएँ – विभिन्न बच्चों के सीखने के स्तर या क्षमताओं में अन्तर के बावजूद।

यह कोई सामान्य, आसान स्थिति नहीं थी। शिक्षकों को समझ नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। मैं भी सोच में थी कि उन शिक्षकों को किस प्रकार लैस करूँ जिन्होंने कभी भी अलग माँग और आवश्यकता वाले बच्चों को नहीं पढ़ाया था। मुझे यह भी मालूम था कि इस स्थिति को लेकर उनमें एक तरह की नाराजगी थी हालाँकि खुले तौर पर उसे व्यक्त नहीं किया जा रहा था। शिक्षकों को उस बच्ची को सम्भालने के लिए लैस करना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक था।

हमने कुछ बैठकें कीं। तय हुआ कि कोई एक नहीं बल्कि सब शिक्षक उस बच्ची के लिए उत्तरदायी होंगे। इसे पूरी टीम का प्रयास बनना होगा। कोई एक व्यक्ति माता–पिता का सम्पर्क–सूत्र रहे, इसके लिए उनमें से एक को कक्षा का मुख्य शिक्षक मान लिया गया। यह भी स्पष्ट था कि कुछ सामान्य रणनीतियाँ तो बनानी होंगी। इनमें से कुछ इस प्रकार थीं –

1. हिदायतें साधारण–सामान्य, स्पष्ट और संक्षिप्त हों।
2. सब शिक्षक बच्ची के समस्यागत व्यवहार के उन पहलुओं को प्राथमिकता से चिह्नित करें जिनकी ओर तुरन्त ध्यान देना आवश्यक है।
3. सुनिश्चित किया जाए कि दृष्टिकोणों में सामंजस्य, निरन्तरता और समानता के लिए माँ–बाप को सूचना–सम्पर्क में रखा जाए।
4. बच्ची को बंगाली ही आती थी। दीदी (सहायिका) हम सबकी अनुवादक का काम करेंगी। तय हुआ कि वे ही बच्ची की स्वच्छता सम्बन्धी और अन्य ऐसी आवश्यकताएँ पूरा करने का दायित्व भी लें।
5. यह भी तय हुआ कि शैक्षणिक काम 'मुख्य केन्द्र–बिन्दु' नहीं रहेगा। यह बात माँ–बाप को भी बता दी गई।
6. कक्षा के मुख्य शिक्षक को हर बात के बारे में जानकारी रहे और वह माँ–बाप से भी सम्पर्क में रहे।

मुझे मालूम था कि ये रणनीतियाँ स्वयं में बहुत सहायक नहीं होंगी। लेकिन फिर भी मैंने स्थिति को ऐसे ही चलने दिया क्योंकि मैं यह भी जानती थी कि शिक्षकों को – और बच्ची को भी – सब कुछ समझने के लिए समय चाहिए था।

नवम्बर में जब मैं वहाँ गई तो मैंने पाया कि सब ठीक नहीं था। आशा के अनुरूप ही शिक्षक निराश थे और बच्ची को सम्भालने में असमर्थ से लग रहे थे। मैंने उनसे बच्ची को सम्भालने के अब तक के अनुभव लिखने का आग्रह किया।

जो निकलकर आया

"मैं हैरत में था कि उसे प्रवेश दे दिया गया। मैडम चूक गई हैं। बच्ची को विशेष स्कूल में भेज दिया जाना चाहिए था। मुझे एहसास हुआ कि बच्ची का दोष नहीं है कि उसका मस्तिष्क विकसित नहीं है। लेकिन इस स्कूल में आने के बाद मैं उसके व्यवहार में परिवर्तन देख रहा हूँ।"

"जब वह यहाँ आई तो मुझे लगा कि वह अन्य बच्चों के साथ कैसे घुल–मिल पाएगी? वह तो अपनी आवश्यकताओं को भी अभिव्यक्त नहीं कर पाती। लेकिन अब वह व्यक्त कर पाती है कि उसे क्या चाहिए। वह हमें समझती है। मैं भी उसे समझती हूँ। समय के साथ वह ठीक हो जाएगी।"

"वह अच्छे–बुरे में अन्तर नहीं कर पाती। उसे यह ज्ञान भी नहीं है कि वह जो कर रही है, क्यों कर रही है। कोई उपयुक्त काम दिया जाता है तो कुछ देर उसके साथ बैठी रहती है। 'खाना व्यर्थ न करो', 'थाली धोओ' आदि जैसे निर्देशों पर ही कुछ करती है। मेरे विचार से वह सही दिशा में जा रही है, उसे घर जैसा ही प्यार मिल रहा है। यहाँ आने के बाद उसने बहुत कुछ सीखा है। वह प्रसन्न है। मैं प्रसन्न हूँ।"

"शुरू में मैं उससे डरती थी। मुझे उससे कुछ दूरी रखने की आवश्यकता महसूस हुई। मैं उसे भगा भी देती थी। एक बार वह फूल लाई और इशारे से मुझसे कहा कि मैं उन्हें अपने बालों में लगा लूँ। मुझे महसूस हुआ कि मैं शायद ठीक नहीं करती रही थी। मैं उससे बात करने लगी। अब जब मैं किसी के स्थान पर कक्षा लेने जाती तो वह मुझे देखकर प्रसन्न होती थी। मुझे लगा कि यह उसकी इच्छा तो नहीं थी कि उसका जन्म ऐसा हो! "

"यह एक नया अनुभव था। वह अन्य बच्चों को देखने लगी और उनका अनुकरण करने लगी।"

"मुझे लगा कि उसे कुछ मानसिक समस्या है। इन तीन महीनों में उसमें कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। उसने शिक्षकों और बच्चों को बहुत तंग किया है।"

"शुरू में तो मैं खीझ जाती थी, क्रोध में आ जाती थी। मुझे लगता था कि उसे काम दिया जाना चाहिए, मैं उसे अपने साथ बिठाती। मैंने उसमें सुधार देखा। एक दिन उसने अँग्रेजी में कहा, 'मे आइ कम इन मैडम?' मुझे खुशी हुई।"

"शुरू में तो वह अपनी माँ के बिना बैठती नहीं थी। लेकिन अब बैठती है। एक–दो बच्चे उसके मित्र बने हैं, उसे स्कूल

आना अच्छा लगता है, कभी–कभी शिक्षकों को सुनती है। हम उस पर और ध्यान दें तो उसमें सुधार आएगा।"

"मुझे लगता है वह मानसिक तौर पर बीमार है। हम उसे सामान्य बच्चों के साथ नहीं पढ़ा सकते।"

"जब उसने यहाँ प्रवेश पाया था, तब से अब में बहुत अन्तर है। वह हमें तो नहीं मारती, फिर वह अपने सहपाठियों के साथ ऐसा क्यों करती है? हो सकता है कि वे बहुत कुछ उसके साथ साझा न करते हों!"

"उसने अपने मित्रों की बात सुनना शुरू कर दिया है। यदि वे उसे कहते हैं, 'मत करो', तो वह नहीं करती। उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उसमें सामाजिक स्तर पर सुधार हुआ है और वह लोगों के साथ घुलने–मिलने की कोशिश कर रही है।"

इन विचारों से स्पष्ट था कि कुछ को छोड़कर बाकी सबको उसमें बदलाव दिखाई दे रहा था। यह विशेष तौर से इस सन्दर्भ में सही था कि उन्होंने बच्ची को उसी रूप–स्वरूप में स्वीकार करना शुरू कर दिया था जिसमें वह थी, और इसीलिए उनका सम्बन्ध भी उसके साथ बनने लगा था। कक्षा–3 और उससे ऊपर के बच्चों से बात की गई और उन्हें उस बच्ची के प्रति संवेदनशील बनाया गया। उन्हें यह भी समझाया गया कि वे उसके आक्रामक होने पर या सामाजिक तौर पर अस्वीकार्य व्यवहार करने पर उसे 'नहीं' कहें न कि उसे छेड़ें या मारें।

प्रशासन का दायित्व सम्भालने वाले व्यक्ति और प्राचार्य ने भी उस बच्ची से बातचीत करना शुरू कर दिया और उसे वर्णमाला सिखाना शुरू किया। बच्ची ने रंग करने में कुछ दिलचस्पी दिखानी प्रारम्भ कर दी थी। कुछ वर्कशीट (रंगने के लिए, वर्णमाला लिखने के लिए आदि) तैयार की गईं और मौका पड़ने पर इस्तेमाल के लिए हाथ में रख ली गईं। शिक्षकों से कहा गया कि वह जब भी उनके कक्षा–कक्ष में आए तो यह उसे दे दी जाएँ। कुछ शीट कभी–कभी उसके घर भी भेज दी जाती थीं।

शैक्षणिक वर्ष के अन्त पर रिपोर्ट–कार्ड के रूप में एक और चुनौती खड़ी हो गई। उसमें क्या दर्ज किया जाए? टीम ने मिलकर सकारात्मक बातों और बेहतरी के पक्षों पर विचार किया।

निम्नलिखित बिन्दु निकलकर आए –

- बच्ची ने इधर–उधर घूमना बन्द कर दिया है।
- उसने किताबें देखना और प्रश्न पूछना शुरू कर दिया है।
- वह अब सामान्य निर्देशों का पालन करने लगी है।
- वह अपने समकक्षों का अनुकरण करती है और गाने का प्रयास करती है।
- वह शौच के लिए प्रशिक्षित हो गई है – आदि, आदि।

चिन्ता की बातें

- अब भी कभी–कभी आक्रामक हो जाती है।
- कागज फाड़ देती है।

सबके लिए हैरत की बात थी कि 29 बातें सकारात्मक और केवल 10 चिन्ता की थीं!

यह देखकर अच्छा लगता था कि बच्ची के माता–पिता अभिभावक–शिक्षक बैठक में आते थे। वे बोले, "हम प्रसन्न हैं कि हमारी बच्ची को स्कूल आना अच्छा लगता है, वह व्यस्त रहती है, किताबें खोलकर देखती है, स्कूल में होने वाली बातें हमारे साथ साझा करती है। सबसे बढ़कर, उसके साथ एक इन्सान की तरह व्यवहार किया जाता है और उसके मित्र भी हैं।"

यह तय है कि शिक्षकों को कई बातें स्वयं से समझने के लिए समय और मौके की आवश्यकता थी। जब वे ऐसा कर पाए, तो उन्होंने उस बच्ची को स्वीकार भी कर लिया। अब वे उसे सम्भाल पाने के लिए अपनी रणनीतियाँ बना पा रहे हैं। मुझे लगता है कि इसके चलते धीरे–धीरे बच्ची और शिक्षक, दोनों स्वतन्त्र हो पाएँगे।

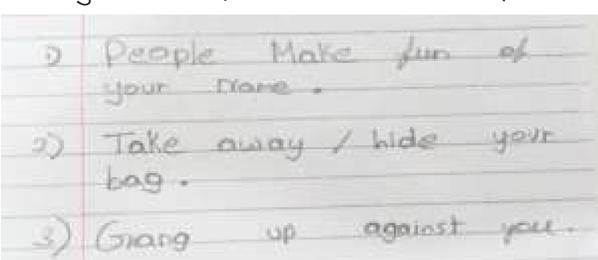
अरुणा वी. प्रसाद अज़ीम प्रेमजी स्कूलों की केन्द्रीय टीम में हैं। फाउण्डेशन में आने से पहले वे हैदराबाद के इण्डस इण्टरनैशनल स्कूल के काउंसलिंग एण्ड स्पेशल एजुकेशन नीड्स विभाग की अध्यक्ष थीं – पढ़ाती भी थीं। उससे पहले वे चेन्नई में "द स्कूल" (कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन ऑफ इण्डिया) में पढ़ाती थीं – वहाँ वे मिश्रित आयु–समूह प्रोग्राम को मार्गदर्शन देने वाली टीम का हिस्सा थीं। बाद में वे आन्ध्रप्रदेश में मदनपल्ले नगर के पास स्थित ऋषि वैली स्कूल में रहीं जहाँ उन्होंने धीमी गति से सीखने वालों के लिए गतिविधि केन्द्र की शुरुआत की। उन्होंने कुछ अर्सा गुड़गाँव के पाथ्वेज़ और जी.डी.गोयनका वर्ल्ड स्कूल में भी काम किया। परामर्शदाता और शिक्षक के रूप में लम्बे समय से वे शिक्षकों और विद्यार्थियों के साथ कई तरह की गतिविधियों में शामिल रही हैं। उनसे aruna.v@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद: रमणीक मोहन



संस्कृति, जिसका महत्त्व है

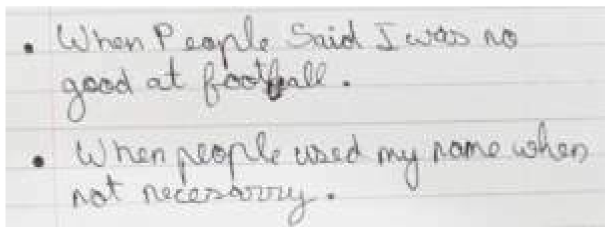
करपगम एस.

माध्यमिक स्कूल की कक्षा 5, 6 और 7 के कक्षा–अध्यापक के तौर पर मैंने बच्चों को कक्षा–सत्रों के दौरान, स्कूल के साझा स्थलों में बैठकर बस की प्रतीक्षा करते हुए, शिक्षकों के कमरे के आगे से जाते हुए, एक–दूसरे को डाँटते– फटकारते हुए सुना है। पहले–पहल तो मुझे लगा कि इस उम्र के बच्चे आत्माभिव्यक्ति करते हुए असहज महसूस करते हैं और अपने साथी विद्यार्थियों को नरमी से चिढ़ाना–तंग करना बस उनके साथ बात की शुरुआत करने का एक तरीका है। लेकिन एक शिक्षक के तौर पर मैं हमेशा कान खोलकर रखती थी – यह पता लगाने के लिए कि वे एक–दूसरे को सम्बोधित करने के लिए कैसी भाषा का प्रयोग करते हैं, क्या वे अपनी बातों में बहुत आक्रामक हैं, आदि–आदि। साथ ही मैं सतर्क रहती थी कि उनके द्वारा की गई एक–एक टिप्पणी या चिढ़ाने की अदा पर हस्तक्षेप न करूँ क्योंकि मुझे लगता था कि यह सब उनके बड़े होने की प्रक्रिया का ही एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है और उन्हें इससे होकर गुजरना चाहिए और अपने ही तरीके से इस सबका



सामना भी करना चाहिए।

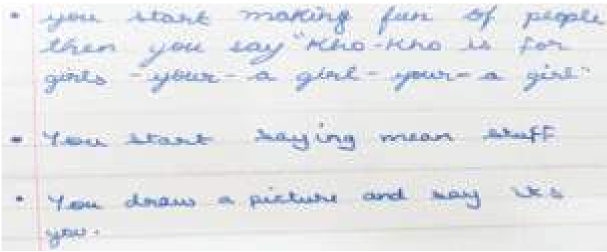
यह सब महसूस करते हुए मैंने अपने बच्चों को विभिन्न सत्रों में और अलग–अलग तरह से यह संकेत भी दिया था कि जब भी वे किसी प्रकार की छेड़छाड़ से निपटने में असमर्थ महसूस करें तो आवश्यकता पड़ने पर मैं उनके लिए उपलब्ध रहूँगी। शिक्षक होने के नाते हमने तय किया कि उन कुछ बच्चों के साथ अलग से बात करेंगे जो हमारी निगाह में इस मदद के हकदार थे ताकि वे हमारे पास आकर विश्वास के साथ अपनी बात रख सकें। यह इतनी सावधानी के साथ और चुपचाप किया गया था कि सम्पूर्ण कक्षा के सामने उनकी बात खुलकर आ जाने पर भी वे कमजोर महसूस नहीं करते थे। हमने उन बच्चों से भी बात की जो स्वाभाविक तौर पर कुछ हद तक हावी प्रवृत्ति के थे और हमारी इन बातों और चेतावनियों को हल्के में लेते थे।



एक बार जब मैं अपनी कक्षा में घुसने को थी, मैंने दो बच्चों के बीच की बातचीत का एक टुकड़ा सुना, "मारे गए, आज हमें हल्के व्यंजन के तौर पर उपमा मिल रहा है।" मैं कक्षा में आते हुए बोली, "तुम्हें उपमा अच्छा नहीं लगता?" सब एक–दूसरे को देखने लगे और बोले, "ऐसा कुछ नहीं है ऑण्टी।" हमारे स्कूल में शिक्षिकाओं को इसी तरह सम्बोधित किया जाता था। मैंने सोचा कि इस बात पर वक्त क्यों बरबाद किया जाए और कक्षा को जारी रखा। लेकिन मैंने स्वयं से यह भी कहा कि खाने–पीने की आदतों पर बच्चों से बात होना चाहिए।

करीब एक महीना बाद भोजन–कक्ष के प्रबन्धक ने बैठक में शिक्षकों से शिकायत की कि बच्चे पाव–भाजी, भेलपूरी, मीठे बन, तले हुए भोजन जैसे व्यंजनों के लिए तो बहुत भीड़ करते हैं लेकिन भाप से पके भोजन तथा बड़ों द्वारा 'सेहत के लिए अच्छे' माने जाने वाले व्यंजनों के लिए नहीं आते।

एक दिन कक्षा में एक बच्चे ने मुझे बताया कि उसके पिता आज मुझे मिलने के लिए आ सकते हैं। यह बच्चा उसके एक सहपाठी के मुताबिक बहुत ही दयालु, नरम स्वभाव का, प्यार करने वाला बच्चा था। वास्तव में तो मैं उसके माता–पिता से

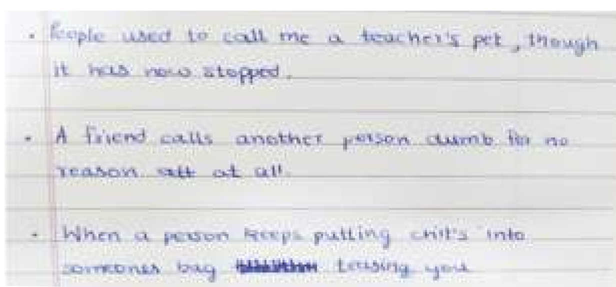


मिलने की सोच ही रही थी ताकि उन्हें उसके सहपाठियों की उसके बारे में इस राय बाबत बता सकूँ। भोजनावकाश के बाद उसके पिता आए और हम शिक्षक–कक्ष में मिले। अगले दो मिनट में जो कुछ उन्होंने हमसे साझा किया, वह इतना चौंकाने वाला था कि विश्वास करना भी कठिन था। उन्होंने कहा कि उनका बेटा बहुत हिंसक हो चला है। उसकी इच्छा की वस्तु उसे नहीं मिलती तो बहुत रूठता,मचलता,नखरे करता है। इससे पहले वह अपनी पसन्द की वस्तुओं का चुनाव तो करता था लेकिन अपने माता–पिता के सुझाव को तुरन्त मान लेता था। पहले तो माता–पिता को लगा कि वह बस अपनी बात मनवाना चाहता है। लेकिन कुछ ही महीनों में वह केवल महँगे ब्रॉड के कपड़े, पेन,पेंसिल,कॉपी, जूते और जुराब तथा खेल का सामान खरीदने की जिद करने लगा। बच्चे के पिता ने मुझसे पूछा कि क्या मैं उसके इस नए व्यवहार के बारे में उसके साथ अलग से बात करने को तैयार हूँ? मैंने उन्हें तो आश्वस्त किया कि मैं जो भी आवश्यक है, वह करूँगी, मगर मैं स्वयं इस बारे में आश्वस्त नहीं थी कि हो क्या रहा है।

इसी से मिलती–जुलती बात मेरे सहकर्मियों के ध्यान में उनकी कक्षा के विद्यार्थियों के माता–पिता द्वारा लाई गई। हमारा ध्यान भी इस ओर जाना शुरू हुआ कि बच्चे एक विशेष ब्रॉड के कपड़े पहनने लगे थे और एक विशेष खेल ही खेलते थे जो उन्हें लगता था कि बेहतर है। जब हमने भीतर खेले जाने वाले तथा कुछ अन्य खेल सुझाए तो उन्होंने यह कहकर उन्हें रद्द कर दिया कि ये तो 'शिशुओं के खेल' हैं। हमें लगा कि यह बड़े होने की प्रक्रिया और अपने वरिष्ठ साथियों का अनुकरण करने का मसला है।

हमने बात को यहीं छोड़ दिया लेकिन जब कुछ और माता–पिता ने भी यह बात उठाई, तो हमें लगा कि शायद कुछ है जिसे हम समझ नहीं पा रहे। हमने अपने–अपने अनुभव शिक्षक–बैठक में साझा किए और चर्चा के बाद कोई न कोई हल तलाशने का निर्णय लिया। एक मौका तब मिला जब एक अभिभावक ने हमें उसके बच्चे से ऊपर बयान में आई घटना से मिलती–जुलती घटना के सन्दर्भ में बात करने का आग्रह किया। यह आग्रह क्योंकि अभिभावक की ओर से आया था, मैंने बच्चे को बुलाया और शुरुआत में उसके नए जूतों के बारे में बात की। पूछा कि क्या उसे इन्हें पहनकर खेलने में आनन्द आ रहा है? उसने कहा कि उसे अभी तक खेलने का मौका ही नहीं मिला है और अगर वह शिक्षक को इस बारे में कुछ बताता है तो उसका बहिष्कार कर दिया जाएगा। फिर यह बात निकलकर आई कि सब बच्चे एक–दूसरे की नकल कर रहे थे – इस्तेमाल की वस्तुओं और भोजन, दोनों के सन्दर्भ में। एक बहुत ही महीन किस्म की दबंगई शुरू हो गई थी। इसके अन्य परिणाम भी निकल सकते थे – यह व्यापक स्तर पर स्वीकार की गई बात है कि इस तरह की दादागिरी के सबके लिए दुष्प्रभाव होते हैं और अगर उनके व्यवहार पर अंकुश नहीं लगाया जाता तो दादागिरी करने वाले बच्चे स्कूल से निकलने के बाद समाज–विरोधी तरीके से बर्ताव कर सकते हैं (रिग्बी, 2003)। इसलिए हमने बच्चों द्वारा अपने समकक्षों तथा अन्य लोगों के साथ व्यवहार में हस्तक्षेप न करने की अपनी बात पर पुनर्विचार किया। हमने तय किया कि बच्चों को इस मुद्दे की गम्भीरता का एहसास दिलाने के लिए हस्तक्षेप और मार्गदर्शन आवश्यक है।

हमने सुबह की सभा में यह मुद्दा उठाया। दबंगई पर बात रखी गई। आवश्यक था कि धीमी गति से चला जाए लेकिन यह भी, कि बच्चों को मुद्दे की गम्भीरता के बारे में जानकारी हो। मुद्दे को खुले में लाने के लिए हमने सुबह की सभा का ही इस्तेमाल किया। इससे बच्चे भी अपना दृष्टिकोण रख पाए। उन्होंने अपने साथी विद्यार्थियों के प्रभाव के बारे में लिखा। अनुसंधान के नतीजों से पुष्टि होती है कि जब विद्यार्थियों को मूल्यों के बारे में खुले तौर पर चर्चा करने के मौके दिए जाते हैं तो विद्यार्थी–कल्याण बढ़ता है, दादागिरी घटती है तथा ज्ञानार्जन के लिए स्थितियाँ बेहतर होती हैं (लोवट, टूमी, क्लेमेंट, क्रॉट्टी एवं नील्सन, 2009)। हमने यह भी पाया कि दादागिरी करने वालों को उनके शिकार हुए विद्यार्थियों के मुकाबले अधिक मदद और सहायता की आवश्यकता थी। असल में तो पहले उन्हें दादागिरी का सामना करना पड़ा था और फिर वे भी अन्य विद्यार्थियों के साथ यही करने लगे थे। यह हल्के–फुल्के मजाक के रूप में शुरू होता था मगर एक



हद के बाद उन्हें समझ नहीं आता था कि कहाँ और कैसे रुका जाए। जब प्रभावित बच्चों ने देखा कि उनकी कोई डॉट–डपट नहीं होने वाली तो वे हमारे पास अपनी समस्याएँ लेकर आए थे।

एक सत्र में उन्हें मार्गदर्शन देने के बाद हमें लगा कि अब उनका सशक्तीकरण किया जा सकता है। एक शिक्षक–बैठक में हमने अपने अनुभव से सीखी बातों पर विचार किया और महसूस किया कि इस अनुभव ने हमें समृद्ध किया है। अकादमिक बातों के मुकाबले एक सहायक, सक्षम बनाने वाला वातावरण अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। मस्तिष्क और भावनाओं से सम्बद्ध अनुसन्धान से पता चलता है कि जब विद्यार्थी मानसिक सुरक्षा अनुभव करते हैं तो सीखने के लिए भी एक बेहतर स्थिति में होते हैं (बर्नार्ड, 1996; गोल्मन, 2006)। दूसरों का खयाल रखने वाली, सहयोगी तथा विद्यार्थी–केन्द्रित कक्षा हो तो स्कूल में मानसिक–मनोवैज्ञानिक सुरक्षा तथा सामाजिक–भावनात्मक समझ के लिए आवश्यक सम्भाल वाला माहौल मिलता है (हार्ट, 1992; जॉनसन तथा जॉनसन, 2003; वाल्बर्ग, ज़िंस और वाइज़्बर्ग, 2004)। शारीरिक तथा मानसिक सुरक्षा के लिए जगह निकालना हमारा सबसे बड़ा काम था। कई तरह के संसाधन उपलब्ध होने के बावजूद हमें मालूम था कि बच्चे के लिए यह बहुत ही संवेदनशील विषय है। यह लेख हमारे अनुभवों की एक तस्वीर भर प्रस्तुत करता है। मैंने व्यक्तिगत तौर पर इस अनुभव से कुछ बहुत ही मूल्यवान बातें सीखीं :

1. निन्दा न करें : बच्चे के व्यवहार को समझने का प्रयास करें।
2. उसे बेहतर समझने के लिए बच्चे के माता–पिता, उसके समकक्षों और शिक्षकों से बात करें। इन बातों को कोरी गप्प के रूप में न लें बल्कि यह तो बच्चे के बारे में बहुमूल्य प्रासंगिक जानकारी है।
3. माता–पिता को अपने विश्वास में लें। उन्हें जानने का अधिकार है और उन्हें ही दायित्व भी लेना होगा। वे समाजीकरण की प्रक्रिया में तथा समकक्षों के दबाव और अन्य प्रभावों का प्रतिरोध करना सीखने की प्रक्रिया में सहायक हो सकते हैं।
4. दिन–प्रतिदिन एकत्र की गई सूचनाओं और जानकारियों की एक डायरी रखें। ये प्रविष्टियाँ वस्तुपरक सलाह और सुझाव पाने में मददगार होंगी। इसके चलते अधिक समर्थ होने में भी मदद मिलती है।

References

- Goleman, D. (2006). Social Intelligence: The New Science of Social Relationships. New York: Bantam books.
- Hart, S. (1992). Collaborative Classrooms. In T. Booth, W. Swann, M. Masterton & P. Potts. (Eds.) Learning for All: Curricula for Diversity in Education (pp. 9-22). London: Routledge.
- Johnson, D. W., & Johnson, R. T. (2003). Student Motivation in Co-operative Groups: Social Interdependence Theory. In R. M. Gillies and A. F. Ashman (Eds) Cooperative Learning: The Social and Intellectual Outcomes of Learning in Groups.
- Lovat, T., Toomey, R., Clement, N., Crotty, R., & Nielsen, T. (Eds.) (2009). Values Education, Quality Teaching and Service Learning: A Troika for Effective Teaching and Teacher Education. Terrigal, Australia: David Barlow Publishing.
- ARigby, K. (2003). Addressing Bullying in Schools: Theory and Practice, Trends and Issues. Australian Institute of Criminology, 1-6. [Viewed 21 Jun 2010] http://aic.gov.au/documents/D/A/2/%7BDA2B9086-7A46-4CBB-B065-86B05BD2EA6C%7Dtandi259.pdf
- Walberg, H.J., Zins, J.E. & Weissberg, R.P. (2004). Recommendations and Conclusions: Implications for Practice, Training, Research and Policy. In J.E. Zins, R.P. Weissberg, M.C. Wang & H.J. Walberg (Eds.), Building Academic Success on Social and Emotional Learning: What does the Research Say? (pp. 209-218). New York: Teachers College Press.
- Bullies and Victims in a Primary Classroom: Scaffolding a Collaborative Community of Practice Veronica Morcom and Wendy Cumming-Potvin, Murdoch University.



करपगम एस. इस लेख के लिखे जाने के समय अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की शैक्षिक नेतृत्व एवं प्रबन्धन टीम में कार्यरत थीं। उन्होंने 12 साल तक भारत के विभिन्न हिस्सों में के.एफ़.आइ. स्कूलों में विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और पर्यावरण–शिक्षा के शिक्षक के तौर पर काम किया है। उन्होंने वर्तनी, पठन एवं लेखन की समझ के क्षेत्रों में कठिनाई का सामना करने वाले बच्चों के साथ विशेष शिक्षक के रूप में कार्य किया है। वे वैकल्पिक पाठ्यचर्या की योजना बनाने और उसे तैयार करने में शामिल रही हैं तथा ऐसे बच्चों के ज्ञानार्जन के वर्तमान स्तरों के लिए पूरक का काम करने वाली सामग्री तैयार करने में भी शामिल रही हैं। वे मनोविज्ञान तथा शिक्षा में स्नातकोत्तर डिग्रीधारक हैं। उन्होंने सीखने में कठिनाई वाले बच्चों को सम्भालने तथा उनके मार्गदर्शन और परामर्श से सम्बद्ध स्नातकोत्तर डिप्लोमा भी लिया है। उन्हें ऑरिगैमी तथा बच्चों के साथ समय बिताना पसन्द है। उनसे kapooh@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन

स्कूलों में अधिगम का माहौल

तपस्या साहा

> "संक्षेप में कहें तो माहौल इस प्रकार की हालातों से बने होते हैं जो किसी प्राणी की विशिष्ट गतिविधियों को या तो बढ़ावा देते हैं या रोकते हैं, या फिर प्रेरित या बाधित करते हैं!"
>
> - जॉन डेवी



अधिगम एक सतत यात्रा है। यह विचार उतना ही पुराना है जितना कि कन्फ्यूशियस (551-479 ईसापूर्व) जिसने यह महसूस किया कि जीवन में सफलता अधिगम से जुड़ी हुई है और जिसे बचपन से ही मन में बिठा देना चाहिए। बौद्ध धर्म में 'विनय' तथा इस्लाम धर्म में 'मदरसा' दोनों ही एक ऐसे भौतिक स्थान की बात करते हैं जहाँ धार्मिक एवं दार्शनिक चर्चाएँ की जा सकती हैं। प्लेटो की 'अकादमी' अथवा उनके सबसे अधिक प्रसिद्ध शिष्य अरस्तू की 'लाइसियम' शायद पहला स्कूल था जहाँ धनी व्यक्ति दर्शन एवं राजनीति पर चर्चा करने के लिए इकट्ठा होते थे और एक–दूसरे के विचारों से सीखते थे। समय के बीतने के साथ–साथ समाज को अलग तरह के कामगारों की जरूरत पड़ी।

हमने यह बात मान ली है कि एक संरचना के माध्यम से निर्धारित पाठ्यक्रम द्वारा व्यवस्थित ढंग से सीखना – समाज की यही माँग है; अतः स्कूल की एक आधुनिक प्रणाली अस्तित्व में आ गई है।

इतने वर्षों में इस प्रकार का शिक्षण–अधिगम काफी यांत्रिक बन गया है, और इसमें अंक प्राप्त करने पर बहुत जोर दिया गया है।

शोरापुर,कनार्टक में फाउण्डेशन की "बाल स्नेही स्कूल पहल" में स्कूलों का अवलोकन 214 संकेतकों पर किया गया जिनमें स्कूल का बुनियादी ढाँचा, कक्षा का वातावरण, शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाएँ, शिक्षक क्षमता निर्माण एवं स्कूल में समुदाय की भागीदारी आदि शामिल थे। अब 60 संकेतक प्रयोग में लाए जा रहे हैं जो केवल शिक्षक की क्षमता–निर्माण और शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया की गुणवत्ता के क्षेत्र में हस्तक्षेप पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। इसलिए ये दो क्षेत्र हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

इन दो क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करते समय हमें यह भी याद रखना चाहिए कि अधिगम तभी होता है जब हम प्रत्येक शिक्षार्थी की सुरक्षा, स्वास्थ्य, समानता एवं समावेशन को ध्यान में रखें। इनमें से प्रत्येक बिन्दु अधिगम के

गुणवत्तापूर्ण वातावरण के आवश्यक लक्षण को वर्णित करता है। सुगमीकरण के दौरान अगर हम इन चार सिद्धान्तों को प्रभावी ढंग से सम्बद्ध एवं संयुक्त कर पाएँ तो इससे अधिगम का जो वातावरण तैयार होगा वह स्थायी होगा।

शिक्षक जितना समझ सकते हों (मैं यहाँ नवनियुक्त शिक्षकों की बात कर रही हूँ जिनका शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया सम्बन्धित वह ज्ञान सीमित होता है जिसकी चर्चा यहाँ की जा रही है), उसके अनुरूप इन विचारों को ध्यान में रखते हुए, और साथ ही जितना व्यावहारिक रूप से सम्भव हो उसे समझते हुए; हमने "अज़ीम प्रेमजी स्कूलों" की स्थापना करने का बीड़ा उठाया है।

इस प्रकार अपने "गुणवत्तापूर्ण अधिगम" के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमने अपने चारों ओर नजर डाली कि आखिर इस "गुणवत्तापूर्ण अधिगम" को पाने के लिए किन चीजों की आवश्यकता है। क्या यह बुनियादी ढाँचा है, कक्षा में बैठने की व्यवस्था है, पौष्टिक मध्यान्ह भोजन है, बच्चों के साथ सख्ती से पेश आना है, उन्हें हमेशा अनुशासित करते रहना है, उन्हें लम्बे–लम्बे गृहकार्य देना है, बार–बार टेस्ट और परीक्षाएँ लेना है या दण्ड देना है? यह तो एक लम्बी सूची है। इन्हीं सब बातों का अनुभव तो बड़े होते समय हममें से अधिकांश लोगों ने किया था। हम



समझ गए कि भौतिक एवं मनो–सामाजिक वातावरण दोनों का अनुकूल होना जरूरी है।

मनो–सामाजिक वातावरण

हमने अपने स्कूलों में इनमें से प्रत्येक क्षेत्र का ध्यान रखने की कोशिश की है। स्कूल के आरम्भ होने से पहले ही हमने समुदाय के बच्चों को अपने साथ स्कूल परिसर में समय बिताने का आमन्त्रण दिया।

सिरोही, रुद्रपुर तथा टोंक के स्कूलों में भर्ती बच्चों को हमने अधिगम के विभिन्न स्तरों पर पाया; शिक्षकों ने हर बच्चे की हर जरूरत का पता लगाया और अपनी पाठ योजना बनाई। यह केवल बच्चे के संज्ञानात्मक स्तर ही नहीं बल्कि उसकी नियमितता की भी बात है। सिरोही में कुछ बच्चे अपने भाई–बहनों के साथ आए, एक तो कुछ दिनों तक अपनी दादी या अपनी माँ के साथ आया। सिरोही में हमारी एक शिक्षिका प्रतिदिन अपनी डेढ़ साल की बेटी के साथ आती थीं। लेकिन स्कूल की दिनचर्या में कभी बाधा उत्पन्न नहीं हुई; सारे स्टाफ ने माँ तथा बच्ची के साथ सहयोग किया।

शुरू–शुरू में कई बार बच्चे रसोई में झाँकते और बिस्कुट खाने की इच्छा व्यक्त करते; शुरू के कुछ महीनों में हमने इस बात का ध्यान भी रखा। कभी–कभी किसी विद्यार्थी को सिर्फ अपने खेलने के लिए एक गेंद मिल जाती तो वह पूरे दिन उसके साथ खेलता रहता और कक्षा से बाहर रहता। शिक्षक भी अत्यन्त धैर्य व प्यार के साथ उसे यह अवसर देते। लेकिन जल्द ही वह यह आदत छोड़ देता और अपने आप



कक्षा में आ बैठता। इस तरह की घटनाएँ शिक्षक की उपलब्धियाँ थीं जो उन्हें सतत प्रेरणा देती रहतीं।

भौतिक वातावरण

सारे अज़ीम प्रेमजी स्कूल किराए के भवनों में शुरू हुए, जो स्कूल के हिसाब से नहीं बनाए गए हैं, अतः सारी कक्षाएँ हवादार या प्रकाशवान नहीं हैं। सभी स्कूलों में खेल का मैदान भी नहीं है।

स्कूलों में फर्नीचर भी कम हैं। जगह का बेहतर उपयोग करने के लिए जमीन पर दरियाँ बिछाकर बैठने की व्यवस्था की गई है। हमने बच्चों के उपयोग के लिए कम ऊँचाई वाली मेजें रखी हैं। हर कक्षा में बच्चों के काम को प्रदर्शित करने के लिए डोरियाँ बँधी हुई हैं और उनकी किताबें रखने के लिए एक शेल्फ है। कक्षा में शिक्षक ने कुछ चार्ट्स और पोस्टर प्रदर्शित किए हैं।

भौतिक वातावरण पर कम जोर देने के तीन कारण हैं। एक, ये किराए के भवन हैं; दो, स्कूल को एकदम अलग–सा नहीं दिखना चाहिए। बच्चों को लगना चाहिए कि स्कूल उनके समुदाय का ही विस्तार है।

अज़ीम प्रेमजी स्कूल में हमने मौजूदा भवन का बहुत बेहतर उपयोग किया और कम से कम भौतिक परिवर्तन किए। कक्षाएँ साफ–सुथरी थीं और भोजन अच्छा था, लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि हर बच्चे और हर शिक्षक के बीच विश्वास व सम्मान और स्वतन्त्रता व समझ का रिश्ता स्थापित हुआ। जिन बच्चों ने सिरोही के अज़ीम प्रेमजी स्कूल में दाखिला लिया वे पहली बार स्कूल आ रहे थे और कुछ ने पढ़ाई बीच में छोड़ दी थी; कुछ बच्चों में तो कक्षा में 15 मिनट के लिए बैठने तक का धैर्य नहीं था। शुरुआत में तो बच्चे ही यह निर्णय ले लेते थे कि उन्हें कब और किस कक्षा में बैठना है। करीब डेढ़ महीने बाद हमने पाया कि वही बच्चे उन कक्षाओं में बैठना चाहते थे जहाँ उन्हें वास्तव में बैठना चाहिए था।

मुझे ऐसा लगा कि उनके लिए अभद्र भाषा का प्रयोग करना, मारपीट करना, लात मारना आदि प्रतिशोध लेने वाली बात नहीं थी वरन उन्हें इसमें आनन्द आता था। चर्चा करने पर यह बात साफ हुई कि बच्चे यही सब अपने घर में और आसपास देखा करते थे; अतः उनका लड़ना–झगड़ना, अपशब्द बोलना और दूसरों के प्रति असंवेदनशीलता दिखाना मानो समय बिताने और आनन्द



प्राप्त करने का एक जरिया था। इस तरह की घटनाएँ बार–बार होती थीं और बच्चे शिकायत करने के लिए दौड़े चले आते; पर जब भी वे हमारे पास आते तब हम उनके



साथ बहुत कोमलता से पेश आते, यह कभी नहीं पूछते कि ऐसा क्यों हुआ या क्यों किया, बल्कि उनमें फिर से दोस्ती करा देते और उन्हें अलग प्रकार के खेलों में लगा देते। ज्यादा तो कुछ नहीं बदला है लेकिन उनकी उग्रता, रवैये और बारम्बारता में निश्चित रूप से कमी आई है। पहले वे जो कुछ करते थे उसकी तुलना में अब वे अन्य खेलों में अधिक रुचि दिखाते हैं।

बच्चों को कभी डर या धमकी का सामना नहीं करना पड़ा, उल्टे उन्होंने महसूस किया कि उन्हें बिना किसी शर्त के स्वीकार कर लिया गया है, यदि उन्हें किसी चीज में रुचि न हो तो उसे सीखने का बोझ उन पर नहीं डाला गया और न ही गृहकार्य सम्बन्धी कोई भार उन पर था। सार्थक गतिविधियों, समूह व जोड़ी बनाकर किए जाने वाले कार्यों के माध्यम से पढ़ाने पर जोर दिया गया। प्रत्येक बच्चे ने अपनी गति से सीखा और सत्र के अन्त में उसका गुणवत्तापूर्ण आकलन किया गया। शिक्षक बच्चों के स्तर की जाँच करते रहते हैं और उसके अनुसार अपने शिक्षण की प्रक्रिया को नया रूप देते हैं।

एक बार रुद्रपुर के अज़ीम प्रेमजी स्कूल के एक भ्रमित अभिभावक ने मुझसे पूछा कि यह स्कूल क्या करने की कोशिश कर रहा है क्योंकि उन्हें स्कूल की प्रक्रियाएँ अपनी समझ से परे लग रही थीं। मैंने उनसे बस इतना ही पूछा कि क्या उनका बच्चा नियमित रूप से स्कूल आता है क्योंकि उस समय मेरे पास उनसे बातचीत करने का पर्याप्त समय नहीं था। वे खुलकर मुस्कुराए और बोले," हाँ, हाँ, मेरा बेटा तो एक दिन के लिए भी स्कूल से अनुपस्थित नहीं होता।"

तपस्या साहा अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की स्कूल कोर टीम के साथ जुड़ी हुई हैं। उन्हें हाई स्कूल की कक्षाओं में लगभग चौदह वर्षों तक भूगोल शिक्षण का अनुभव है। उनसे tapasya@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल



प्रवासी श्रमिकों के बच्चों के

स्कूलों में समर्थ वातावरण

एच. के. शुभा

लाखों अकुशल एवं अर्ध–कुशल मजदूरों ने अपनी अत्यधिक गरीबी से बचने के लिए और बड़े शहरों में नौकरी खोजने के लिए अपने पैतृक गाँवों को छोड़ दिया है। ये प्रवासी मजदूर काम के सिलसिले में अपने परिवार के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते रहते हैं। निर्माण परियोजना के पूरा होने की अवधि तक ये लोग छोटे से शेड या झोपड़े में रहते हैं, जो कभी–कभी निर्माण कम्पनी उन्हें रहने के लिए देती है। अधिकतर निर्माण कम्पनियाँ उन्हें बिजली या शौचालय की सुविधा नहीं प्रदान करतीं। काम खत्म होने पर वे दूसरी जगह चले जाते हैं।

ऐसे परिवारों के अधिकांश बच्चे स्कूल नहीं जाते क्योंकि उनके परिवार का काम ही प्रवासी प्रकृति का होता है और पास के अच्छे स्कूल तक उनकी पहुँच भी नहीं होती। इसके साथ ही इन बच्चों को अपने छोटे भाई–बहनों की देखभाल व घर की जिम्मेदारियाँ भी उठानी पड़ती हैं क्योंकि उनके माता–पिता को काम करने के लिए बाहर जाना पड़ता है। परिणाम स्वरूप ये बच्चे अपने छोटे भाई–बहनों की देखभाल व घर की जिम्मेदारियाँ उठाने लगते हैं और अपने इसी ज्ञान के कारण वे छोटे वयस्क बन जाते हैं। जाहिर है कि ऐसी आबादी में बच्चों की शिक्षा अन्तिम प्राथमिकता बन जाती है क्योंकि उनके लिए दैनिक रोटी कमाना हर रोज का संघर्ष है; साथ ही अधिकतर बच्चे प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं।

इन बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने के लिए एवं पाठ्यक्रम व अन्य समर्थकारी तत्वों की समझ विकसित करने के लिए अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन ने इनके लिए स्कूल खोलने का निर्णय लिया। दो बिल्डरों की साझेदारी के साथ 2007 में हमने बेंगलूरु में प्रवासी निर्माण कर्मियों के बच्चों के लिए दो स्कूल शुरू किए। स्कूल की स्थापना से लेकर उन्हें सुचारु रूप से चलाने, सुविधाएँ प्रदान करने, शिक्षकों को प्रशिक्षण देने, पाठ्यक्रम को पूरी तरह से जाँचकर उसे सुधारने आदि की अपनी अब तक की यात्रा में हमें बच्चों की जरूरतों को समझने में मदद मिली है और हम अभी भी इसके बारे में सीख रहे हैं।

सबसे पहले तो हमें इस बात का एहसास हुआ कि अगर हम केवल छह से बारह वर्ष के बच्चों को अपने स्कूल में लें तो कक्षा में एक भी बच्चा नहीं आएगा क्योंकि अधिकांश बच्चों पर या तो अपने छोटे भाई–बहनों के देखभाल की जिम्मेदारी होती है या फिर पड़ोस की अन्य शिशुओं की देखभाल की–जिसके लिए उन्हें हर महीने कम से कम चार सौ से पाँच सौ रुपए मिलते हैं। तो हमने निर्णय लिया किया कि हम शिशुओं व छोटे बच्चों के लिए क्रेच और पूर्व स्कूली सुविधाएँ प्रदान करेंगे। हमने यह निर्णय भी लिया कि हम ये स्कूल कैम्प में ही या कैम्प के आसपास ही खोलेंगे ताकि बच्चे सुरक्षित महसूस करें और अपने झोपड़े और सामान पर नजर भी रख सकें। इन बच्चों द्वारा आगे की पढ़ाई जारी न रख पाने के यही मुख्य कारण थे। इस व्यवस्था से बच्चों को अपनी पढ़ाई जारी रखने की स्वतन्त्रता मिल जाती है और माता–पिता को भी लगता है कि उनके बच्चे व उनका सामान सुरक्षित है।

बच्चों को स्कूल में नामांकित करने के बाद हमने महसूस किया कि अधिकांश बच्चे कुपोषण का शिकार थे। अतः हमने यह निर्णय लिया कि उन्हें तीन वक्त भोजन दिया जाए। इसके मेन्यू को पोषण विशेषज्ञ की सलाह के आधार पर नियत किया गया। बच्चों को स्कूल में सुबह का नाश्ता, दोपहर का भोजन और शाम का नाश्ता मिलता है। बच्चों के स्वास्थ्य की नियमित जाँच (दाँत, पूरा शरीर व आँख) की जाती है और आवश्यक अनुवर्ती उपचार भी उपलब्ध कराया जाता है। इसके अलावा हर महीने बच्चों की



ऊँचाई और वजन को जाँचकर उसे दर्ज किया जाता है और यह पता किया जाता कि पोषण व स्वास्थ्य सम्बन्धी इन सुविधाओं का उनके स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इस पहल से बच्चों के स्वास्थ्य में निश्चित रूप से सुधार आया है। चिकित्सा सम्बन्धी देख–रेख के अलावा हमने बच्चों में स्वच्छता एवं स्वस्थ आदतों के बारे में जागरूकता पैदा करने की भी कोशिश की है। यही नहीं, यहाँ बच्चे कई और कौशल भी सीखते हैं जैसे कि साझा करना, जिम्मेदारी लेना, भोजन परोसना, साथ में खाना, अपनी थाली धोना, जगह को साफ करना, टीम में काम करना आदि.....!



साझा करने का सुख

हमें मालूम था कि राज्य द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम इन बच्चों के लिए ठीक नहीं रहेगा। इसके दो कारण थे; पहला तो यह कि इन बच्चों के स्कूल में रहने की अवधि अनिश्चित और बहुत कम होती है, इसलिए हमारे पास इतना समय नहीं होता कि हम कई सालों तक आराम से बच्चों को अपेक्षित शैक्षिक कौशल सिखा सकें; दूसरे ये बच्चे भारत के विभिन्न भागों से आते हैं और उनकी भाषा, संस्कृति और सीखने का स्तर भिन्न होता है।

फाउण्डेशन ने एक पाठ्यक्रम और प्रासंगिक शिक्षण शास्त्र विकसित करने का निर्णय लिया जो बच्चों के इस विषम समूह के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। अतः यह भी जरूरी हो गया कि एक ऐसे पैकेज को विकसित किया जाए जिससे बच्चों की बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक और बहुसामाजिक जरूरतें पूरी हो सकें। इसके लिए हमने मॉड्यूल आधारित तरीके को अपनाया। हर मॉड्यूल में बुनियादी दक्षताओं और कौशलों को शामिल किया गया है ताकि अगर बच्चों



को बीच में यह स्कूल छोड़कर जाना पड़े तो उन्हें मुख्य धारा के स्कूलों में प्रवेश लेने में सुविधा हो सके। बच्चों के विभिन्न अधिगम स्तरों को ध्यान में रखते हुए एक समय में दो या तीन मॉड्यूलों को करवाया जाता है। इन मॉड्यूलों को करवाते समय पूरे समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि बच्चों को स्वतन्त्र शिक्षार्थी बनाया जाए।

बाल स्नेही कक्षाएँ

स्कूल में प्रवेश करते समय विभिन्न विषयों में बच्चों के सीखने के स्तर को समझने और उनके स्वास्थ्य के बारे में जानने के लिए हमने एक प्रवेश आकलन फॉर्म को डिजाइन किया है। इसके आधार पर उन्हें विभिन्न मॉड्यूलों के तहत रखा जाता है। जो बच्चे और माता–पिता कैम्प से स्थानान्तरित होना चाहते हैं उन्हें एक "एक्जिट या निर्गम प्रमाणपत्र" दिया जाता है जिसमें बच्चे के स्कूल में रहने एवं वर्तमान अधिगम स्तर आदि के विवरण दिए होते हैं। इस प्रमाण पत्र के आधार पर बच्चे को दूसरे स्कूलों में प्रवेश मिलता है।

जब बच्चे स्कूल में प्रवेश करते हैं तो पहले कुछ दिनों तक वे अपने छोटे भाई–बहनों को कमर में लटकाए पूरे स्कूल में घूमते–फिरते हैं। वे अपनी मर्जी के मुताबिक अन्दर–बाहर आते–जाते रहते हैं। उन्हें अपने को स्कूल के अनुकूल ढालने और अपने भाई–बहनों व समूह से अलग होने के लिए पर्याप्त समय दिया जाता है।

हमारे नन्हें वयस्क

चूँकि इन स्कूलों में बच्चों के रहने की अवधि अनिश्चित और कम होती है, इसलिए इन्हें साल भर खुला रखा जाता है। इन स्कूलों के शिक्षकों और बच्चों को औपचारिक रूप से सालाना छुट्टी नहीं मिलती। लेकिन कटाई के मौसम में



ये बच्चे महीने–दो–महीने के लिए अपने माता–पिता के साथ अपने गाँव जरूर जाते हैं। शुरू में तो हमें माता–पिता एवं बच्चों को यह समझाने के लिए संघर्ष करना पड़ता था कि वे स्कूल से छुट्टी न लें लेकिन अब बच्चे शिक्षकों से इस बात के लिए लड़ते हैं कि वे शिक्षक विकास कार्यक्रमों के लिए और सप्ताहान्त में स्कूल बन्द न करें।

बच्चों के लिए छोटी–छोटी बातें भी बहुत मायने रखती हैं। स्कूल में बच्चों को आदमकद आईना, कंघी, बालों के लिए तेल, टैल्कम पाउडर और पेट्रोलियम जैली दी जाती है। हर रोज आईने के सामने खड़े होकर अपने और अपने भाई–बहनों को सजाना–सँवारना उनके लिए बहुत ही सुखद अनुष्ठान है–इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। इसके अलावा सुरक्षित पेय जल, सामान्य पानी, बिजली, बालक और बालिकाओं के लिए अलग–अलग शौचालय जैसी कुछ बुनियादी सुविधाएँ भी हम बच्चों को देते हैं और अब इनका उपयोग करना उनकी आदत बन चुकी है।

कक्षा में हम ऐसे फर्नीचर का उपयोग करते हैं जिन्हें आसानी से उठाकर इधर–उधर रखा जा सके। इससे हम कक्षा में उपलब्ध स्थान का उपयोग अपनी आवश्यकतानुसार कर सकते हैं। स्कूल की टीम और बच्चे दोनों ही स्कूल के भौतिक वातावरण का सम्मान करते हैं और उसकी देखभाल करते हैं जिसके लिए वे स्कूल को साफ और व्यवस्थित रखते हैं एवं उसके रख–रखाव पर ध्यान देते हैं।

कक्षा में बच्चे ही नियम बनाते हैं और एक–दूसरे को उसकी याद दिलाते रहते हैं। स्कूल में सुरक्षा को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। हमने कोशिश की है कि स्कूल का भौतिक वातावरण सुरक्षित, मित्रवत और सरल हो। इससे बच्चे को लगेगा कि स्कूल उसके घर का ही एक हिस्सा है। इसके साथ ही हमने स्कूल में समुदाय के ही सहायक को लिया है और ज्यादातर शिक्षक भी उनके ही मूल स्थानों के हैं।

जो बच्चे पाँच मॉड्यूल और संक्रमण मॉड्यूल (जो मुख्य धारा के नियमित स्कूल में बच्चे के अनुकूलन को सुगम बनाता है) को पूरा कर लेते हैं, उन्हें मुख्य धारा के स्कूल में स्थान पाने का पूरा अवसर दिया जाता है और उनके माता–पिता को भी इस बात के लिए प्रोत्साहन और समर्थन दिया जाता है। टीम भी नियमित रूप से इन स्कूलों में जाती है और शिक्षकों से बच्चों के बारे में बातचीत करके उनकी प्रगति का पता लगाती रहती है।

यहाँ दिलचस्प बात यह है कि जो बच्चे नियमित स्कूल में जा रहे हैं वे भी इस प्रवासी स्कूल में रोज आते हैं, अपने दिन भर के अनुभव साझा करते हैं, शाम का नाश्ता करते हैं, अपना गृहकार्य पूरा करते हैं और उसके बाद ही अपने घर जाते हैं। जो बच्चे हमारे स्कूल को छोड़कर जाते हैं, उनकी प्रगति की जाँच भी त्रैमासिक रूप से की जाती है।

स्कूल के कार्यक्रमों में माता–पिता की भागीदारी

अपनी इस यात्रा की शुरुआत में ही हम समझ गए थे कि अगर हम चाहते हैं कि बच्चे स्कूल में आना जारी रखें तो इसके लिए माता–पिता के समर्थन और विश्वास की आवश्यकता है। इसलिए हम माता–पिता के साथ तालमेल बिठाने और उनके साथ अविरत विश्वास का रिश्ता कायम करने की दिशा में प्रयत्नशील रहते हैं। हम यह सुनिश्चित करते हैं एक शिक्षक कैम्प में जाए, बच्चे के परिवार को जाने, बच्चे के बारे में माता–पिता की बातों को सुने, बच्चे के अधिगम की प्रगति को उनके साथ साझा करे और बातचीत के माध्यम से उन्हें इस बात के लिए राजी करे कि वे अपने बच्चों की शिक्षा को जारी रखें। माता–पिता को नियमित रूप से स्कूल आकर बच्चों के साथ अपनी प्रतिभा साझा करने का निमन्त्रण भी दिया जाता जैसे कहानी सुनाना, पेंटिंग, बढ़ईगीरी और राजगीरी आदि।

इन स्कूलों को चलाने के लिए आवश्यक टीम का निर्माण करने के लिए सही लोगों को पहचानने में हमें एक लम्बा समय लगा। हमें ऐसे लोगों की तलाश थी जिनमें असीम ऊर्जा, बच्चे के साथ घुल–मिल जाने की क्षमता, नवाचार करने की इच्छा/क्षमता और पेशेवर शिक्षण की डिग्री हो। अब हमारे पास समर्पित युवा ऊर्जावान शिक्षकों की ऐसी टीम है जो स्कूल या बच्चों को लेकर किए गए किसी भी प्रयत्न को हाथ में लेने से हिचकिचाते नहीं। स्कूल में





वयस्कों और बच्चों के बीच पारस्परिक परवाह और सम्मान पर आधारित रिश्ते की वजह से हमारे काम में बहुत बड़ा अन्तर आया है। यहाँ बच्चे और बड़े दोनों ही स्कूल में धर्म, संस्कृति एवं लिंग अभिमुखीकरण की भिन्नता की सराहना करना सीखते हैं। स्कूल की टीम बच्चों को न केवल शैक्षिक दृष्टि से सशक्त बनाती है वरन भावनात्मक, शारीरिक एवं नैतिक रूप से पूरी तरह से विकसित होने में भी उनकी सहायता करती है।

प्रसन्न शिक्षक और प्रसन्न बच्चे

यह माता–पिता, प्रेरित एवं समर्पित शिक्षकों तथा बिल्डर की इच्छा का ही संयुक्त प्रयास है जो स्कूलों को जीवन्त रखे हुए है।

एच.के.शुभा 2007 से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ काम कर रही हैं। वे "प्रवासी श्रमिकों के बच्चों के लिए शिक्षा" कार्यक्रम की शुरुआत से ही उसके साथ जुड़ी हुई हैं। सम्प्रति वे अज़ीम प्रेमजी स्कूल, यादगीर के प्रधानाचार्य की सलाहकार हैं और बेंगलूरु के दोनों प्रवासी मजदूर स्कूलों की एंकरिंग भी कर रही हैं। उनसे shubha@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल



दिन की शुरुआत

सुरेन्द्र कुन्तल

हर सुबह 40 मिनट की अवधि के लिए हम सब अनौपचारिक रूप से एक जगह इकट्ठा होते हैं और इस सभा को दिन की शुरुआत का नाम दिया गया है। सुबह हम सब स्कूल के आँगन में एक गोलाकार समूह बना लेते हैं। फिर हम एक–एक करके गिनना शुरू करते हैं। इस सभा का प्रयोग दिन भर की गतिविधियों के लिए जिम्मेदार शिक्षक द्वारा किया जाता है।

इसका नाम दिन की शुरुआत क्यों रखा गया?

जुलाई के महीने में (सत्र आरम्भ होने पर) हमने देखा कि बच्चे अपने अधिगम स्तर के विभिन्न स्तरों पर हैं। विद्यार्थी नए थे और उनमें से अधिकांश कभी स्कूल भी नहीं गए थे क्योंकि या तो उन्होंने स्कूल छोड़ दिया था और या कभी नामांकन कराया ही नहीं था। हमें भी उनके साथ जरा असहजता का अनुभव हो रहा था क्योंकि हमने इतने सारे छोटे बच्चों को नहीं पढ़ाया था।

चूँकि बच्चे स्कूल में बहुत सारी ऊर्जा के साथ आते हैं, इसलिए हमने सोचा कि उसका उपयोग सकारात्मक रूप से किया जाए। सभी शिक्षक "शुरुआत" में भाग लेते थे तो हमें लगा कि उनके साथ जुड़ना भी आसान रहेगा। हमने सोचा कि हटकर कुछ किया जाए और इसलिए हमने विषयों के बारे में खोज शुरू कर दी। अब क्योंकि स्कूल में यह गतिविधि स्कूल में सबसे पहले की जानी थी इसलिए इसका नाम दिन की शुरुआत रखा गया।

हमारे उद्देश्य

- सम्बन्ध स्थापित करना
- आत्मविश्वास का विकास करना
- प्रेरणा देना एवं आत्म–अभिव्यक्ति के लिए मंच प्रदान करना
- यह प्रयोग करना कि क्या वे मिल–जुलकर, खेलों के माध्यम से आनन्दपूर्वक सीख पाते हैं
- बहु–कक्षा एवं बहु–स्तर वाले बच्चों के साथ काम करना सीखना

प्रारूप

यह निर्णय लिया गया कि स्कूल के शुरू होते ही, अधिगम को बढ़ाने की दृष्टि से, हर शिक्षक अपने विषय के उपयुक्त कविता या गतिविधि को पेश करेंगे। इसकी अवधि भी दिन की शुरुआत में 40 मिनटों के लिए तय की गई। इसे एक निश्चित समय–सारणी के अनुसार किया गया था।

विषयों से सम्बन्धित प्रक्रियाएँ

भाषा : हमने अभिनय–गीत और कविताओं से शुरुआत की जिन्हें पहले शिक्षकों ने गाकर पेश किया। बाद में बच्चों ने उन्हे सीखा और बारी–बारी से गायन का नेतृत्व किया। नए शब्दों से बच्चों को परिचित कराने के लिए ये

- कॉलीफ्लॉवरः जब मध्याह्न भोजन परोसा गया तो प्रवीण नामक एक बालक ने कहा, " वाह! आज तो कॉलीफ्लॉवर की सब्जी बनी है। "
- हिन्दी में पहेली हल करनाः सभा में पहेली पर आधारित एक कविता का पाठ किया गया। उसे हल करने के लिए विद्यार्थियों ने जोड़ और घटाने की मूल संक्रिया का प्रयोग किया। सारे बच्चे आँगन में जमीन पर बैठकर इसे हल करने में व्यस्त थे।
- नियम की चिन्ता न की जाएः जब एक विद्यार्थी से पूछा गया कि क्या उसने खेल के नियमों को समझ लिया है तो उसने कहा," पता है, हॉप अ लिटल करके जाना है!"

शब्द गानों, कविताओं या बच्चों के आसपास के वातावरण से लिए गए ताकि वे अपने को उनसे जुड़ा हुआ महसूस करें और उनका उपयोग अपने दैनिक जीवन में कर सकें। बच्चों ने मिल–जुलकर बारी–बारी से गीतों व कविताओं को गाने में बहुत रुचि दिखाई और दूसरों का नेतृत्व करते समय तो उन्हें बहुत खुशी हुई। शरीर के अंगों, रंगों, फलों, सब्जियों, पशुओं, दिनों व महीनों के नाम, अँग्रेजी और हिन्दी की वर्णमाला आदि खेलों के माध्यम से सिखाए गए। चार्ट पर गाने व कविताएँ लिखकर उन्हें दीवारों पर चिपकाया गया। सिखाए हुए शब्द भी लिखकर दीवार पर चिपका दिए गए ताकि बच्चे उन्हें पढ़ सकें और उन्हें अपनी पुस्तिका में लिख सकें।

गणितः जब बच्चे एक गोले में इकट्ठा हुए तो पहले उन्होंने ही गिनती की। बाद में गतिविधियों को विभिन्न अवधारणाओं के साथ जोड़ते हुए उन्हें खेल के रूप में करवाया गया। खेल–खेल में ही बच्चों का समूहीकरण सम और विषम संख्या के आधार पर किया गया और फिर हॉपस्कॉच (कूदने वाला खेल) तथा गिलास को गेंद से मारने का खेल खिलाया गया। बच्चों ने अपनी पहचान के लिए दी गई संख्याओं को लिखा, पंजीकृत किया और बाद में जोड़ और घटाने की मूल संक्रिया का प्रयोग किया। अन्तराल से गिनने के द्वारा गुणा का परिचय कराया गया।



गणित के साथ मनोरंजनः बच्चों ने कबड्डी खेली। इसके लिए उन्हें समूह में बाँटा गया। आखिरी चक्र में उन्होंने खुद ही यह गिनती की कि टीम में कितने खिलाड़ी सुरक्षित हैं। इसके बाद "से अधिक (>)", "से कम (<)" एवं "बराबर (=)" के प्रतीक चिह्नों से बच्चों का परिचय कराया गया।

दीवारों का प्रयोगः एक गाने के माध्यम से महीनों के बारे में सीखने के बाद बच्चों ने DD/MM/YYYY प्रारूप में तारीख लिखी। दीवार पर महीनों वाले कैलण्डर को लिख दिया गया था ताकि उसकी मदद से बच्चे तारीख व दिनों को पहचान सकें। बच्चों द्वारा सीखकर लिखे गए शब्दों, कविताओं, गानों, दिनों व चार दिशाओं के नाम आदि को दीवार पर प्रदर्शित किया गया। विद्यार्थियों के नाम, अँग्रेजी और हिन्दी की वर्णमालाएँ आदि को भी खेलों के माध्यम से विद्यार्थियों द्वारा लिखा गया।

दिशाः दिशाओं के बारे में जानने के विषय से भी बच्चों को परिचित कराया गया। अधिकांश बच्चे यह जानते थे कि सूरज किस दिशा से उगता है। इसके आधार पर हमने दिशाओं के नाम सीखने की गतिविधियाँ कीं। बच्चे जिस दिशा से स्कूल आते हैं और उनका घर स्कूल से जिस दिशा की ओर है – उसके आधार पर हमने बच्चों के समूह बनाए।

कैलण्डरः इस थीम में दिनों व महीनों के नाम शामिल किए गए। महीनों के नाम का परिचय एक गाने के माध्यम से और कार्ड पर महीनों के नाम लिखकर कराया गया। बाद में बच्चों ने कार्डों को उपयुक्त क्रमानुसार रखा। तब तक बच्चे 30 तक की क्रमानुसार गिनती करना सीख चुके थे और एक से 30 तक की संख्या वाले कार्डों को जमाना जानते थे। वे श्यामपट्ट पर DD/MM/YYYY प्रारूप में तारीख भी लिखने लगे थे। सभी बच्चों को ऐसा करना बहुत रुचिकर लगा।

तराजूः स्कूल के आँगन के एक कोने में तराजू रखा हुआ है। शुरू–शुरू में तो यह टूट ही गया क्योंकि बहुत सारे बच्चे चीजों को तौलने वाले प्रयोग कर रहे थे और यह जानना चाह रहे थे कि तराजू की सुई कैसे हिलती–डुलती है। अब यह तराजू स्थायी रूप से जमाकर रख दिया गया है और बच्चे ईंटों से लगाकर मिट्टी, लकड़ी और पौधे तक को इसमें तौलते हैं। इसका प्रयोग गणित और पर्यावरण अध्ययन के लिए किया जाता है।

सूरज की किरणों का अंकनः सूरज की किरणें हमारे आँगन में एक निश्चित कोण में आकर पड़ती थीं, तो हमने उसे अंकित करने का निर्णय लिया। ऐसा हमने दो दिन में एक बार करना शुरू किया और कोण में अंकित विक्षेपण



देखा। ऐसा करके बच्चे बेहद उत्साहित हुए और अन्त में हमने ग्लोब का प्रयोग किया ताकि पृथ्वी की परिक्रमा को समझकर मौसम के बारे में जाना जा सके। अधिकांश बड़े बच्चों को यह पता चल गया कि गर्मी के मौसम में बहुत गर्मी और सर्दी के मौसम में सर्दी क्यों पड़ती है और पृथ्वी पर सूरज की किरणों के पड़ने का क्या प्रभाव पड़ता है।



घड़ी गतिविधि: हमने एक घड़ी ली और उसे खोला, उसका काँच हटाया और सेकण्ड वाली सुई भी निकाल दी। मिनट वाली सुई 12 पर रखी और समय पूछने–बताने की गतिविधि शुरू की। जो बच्चे अंकों को अच्छी तरह से पहचानते थे वे सही समय बताने लगे। फिर हमने मिनट वाली सुई से परिचित कराया। कुछ को यह विचार मुश्किल लगा क्योंकि इसमें पहाड़े की जरूरत पड़ती थी। हमने बच्चों को पूछने, बताने और सबसे महत्त्वपूर्ण बात, सुई को छूने एवं अंकों पर फिराने का अवसर दिया। बच्चों ने उसे छूने और घण्टे की सुई को गोल–गोल घुमाने में बहुत रुचि ली भले ही वे समय देखना न जानते हों।

नापने का फीता: बच्चों की ऊँचाई नापने के लिए एक कोने में नापने का फीता भी चिपका दिया गया था। बाद में बच्चों द्वारा इसका उपयोग अंक देखने एवं एक–दूसरे की ऊँचाई नापने के लिए होता था। जो बच्चे अंक नहीं भी पहचान पाते थे उन्हें भी इस फीते का अवलोकन करना रुचिकर लगता था।

उपलब्धियाँ

- बच्चे आत्मविश्वासी बने एवं खुद को दृढ़ता से व्यक्त करने लगे।
- बच्चों ने हिन्दी व अँग्रेजी दोनों कविताओं के शब्दों व अभिनय को काफी आसानी से सीखा। साल के अन्त तक वे हिन्दी की 18 और अँग्रेजी की 12 कविताओं का पाठ करने लगे थे।
- बच्चों ने गणित की अधिकांश अवधारणाएँ तथा अँग्रेजी शब्द सीख लिए। इसके अलावा बच्चों ने बातचीत के लिए हिन्दी का प्रयोग करना शुरू कर दिया जो पहले उनकी मातृभाषा थी।
- बच्चों ने स्वयंमेव तारीखें लिखनी शुरू कर दीं।
- बच्चों ने घण्टों में समय बताना सीख लिया, कुछ तो घण्टों व मिनटों में भी समय बताने लगे।
- बच्चों को दिशा सम्बन्धी ज्ञान भी मिला।
- बच्चों ने कविता पाठ, लेखन व अवधारणाओं को समझने में एक–दूसरे की मदद की।
- हमने बच्चों के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित किए जो बहुत लाभदायक रहा।
- बच्चों ने साथ–साथ सीखा तथा हमने भी उनके साथ सहजता महसूस की।

चुनौतियाँ

अब हमारे 75 यहाँ से भी अधिक विद्यार्थियों का नामांकन हो चुका है। हमारी गतिविधियों और खेलों के लिए जगह छोटी पड़ने लगी है। अब हमें अपने पास उपलब्ध स्थान के भीतर ही गतिविधियों व अधिगम के परिचय के लिए नए तरीकों के बारे में सोचना होगा। बच्चे और उनकी ऊर्जा ही हमारी प्रेरणा हैं हालांकि हमें जगह की कमी महसूस होती है खासकर तब जब किसी खेल का आयोजन करना हो।

सुरेन्द्र कुन्तल अज़ीम प्रेमजी स्कूल, मांडवा, सिरोही, राजस्थान में फरवरी 2012 से अँग्रेजी के शिक्षक हैं। इसके पहले वे चार साल तक प्रतिष्ठित स्कूलों में सीनियर कक्षाओं को पढ़ा चुके हैं। उन्हें पढ़ना, बैडमिंटन खेलना और मित्रों के साथ आराम से समय बिताना पसन्द है। उनका मानना है कि वे लगातार प्रयास करके अपने लिए नियत किए गए लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। उनसे surendra.kuntal@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल



स्कूलों में लड़कियों के लिए सकारात्मक माहौल

निर्मला वी. जी.

पृष्ठभूमि

भारत के कई ग्रामीण समुदायों में किशोरी लड़कियाँ कमजोर और उपेक्षित अवस्था में रहती हैं। आमतौर पर तो उन्हें यह मानकर खिलाया–पोषित किया जाता है कि वे 'पराया धन' हैं, परिवार पर बोझ हैं, और उन्हें दहेज के साथ दे दिया जाना है। अन्य सामाजिक मिथक भी हैं जो इस भावना को ही सुदृढ़ करते हैं। इसी का नतीजा है कि माता–पिता द्वारा किया जाने वाला भेदभाव स्कूलों में भी लिंग आधारित असमानताओं की शुरुआत करता है। इसीलिए वयस्क लड़कियाँ आगे बढ़ने के लिए आवश्यक ज्ञान और दक्षताएँ हासिल नहीं कर पातीं और कमजोर बनी रहती हैं। अपने समकक्षों, माता–पिता तथा समाज से अत्यधिक दबाव में रहते हुए वे आत्मविश्वास भी नहीं रख पातीं।

इस सबको ध्यान में रखें तो लिंग आधारित भेदभाव, जीवन में उपयोगी दक्षताओं, पोषक आहार, स्वास्थ्य तथा सम्बन्धित मुद्दों के बारे में जागरूकता पैदा करने की तुरन्त आवश्यकता है। नवयुवतियों द्वारा इन बातों के लिए दायित्व उठाए जाने से इस विचार को बल मिलता है कि आत्मविश्वास निर्णय लेने से पैदा होता है। इन नवयुवतियों के जीवन के लिए आवश्यक है कि वे स्वयं अपनी जिम्मेदारी उठाना तथा विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन कर पाना और सही निर्णय ले पाना सीखें। यह एक कठिन प्रक्रिया है लेकिन इस जागरूकता के साथ ही वे एक सम्मानजनक जीवन जी पाएँगी।

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय (के.जी.बी.वी. स्कूल) क्यों?

ऊपर कथित परिस्थितियों का सामना कर पाने और उन पर काबू पाने के लिए लड़कियों को आत्मविश्वास विकसित करना होगा और स्वयं के बारे में सकारात्मक छवि बनानी होगी जो निर्णय ले पाने की उनकी दक्षताओं में बेहतरी के लिए मददगार हो, असफल होने के भय से ऊपर उठ पाने में सहायक हो। इस प्रक्रिया को बल देने के लिए भारत सरकार ने लड़कियों की शिक्षा के लिए 'कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय' नाम से एक नई योजना शुरू की है। इसके तहत प्रारम्भिक स्तर पर 11 से 14 साल तक की उन बालिकाओं के लिए आवासीय स्कूल खोले गए हैं जो पिछड़े इलाकों में अनुसूचित जाति और जनजाति, अन्य पिछड़ी जातियों तथा अल्पसंख्यक समुदायों से हैं तथा स्कूल बीच में ही छोड़ चुकी हैं। उद्देश्य है कि समाज के वंचित तबकों की बालिकाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित की जाए। उद्देश्य यह भी है कि नामांकन बढ़ाया जाए और स्कूल छोड़ने वालों की संख्या में कटौती हो। प्राथमिक स्तर पर ध्यान कुछ अधिक आयु की बालिकाओं पर है जो स्कूल बीच में ही छोड़ चुकी हैं और अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाईं। लेकिन कठिनाई वाले कुछ सन्दर्भों में (जैसे एक स्थान पर अधिक समयकाल के लिए न रुकने वाले प्रवासी लोग, अलग–थलग बिखरी हुई बसाहट के इलाके जहाँ प्राथमिक / उच्च प्राथमिक स्कूल नहीं हैं) उच्च प्राथमिक स्तर पर कम उम्र की बालिकाओं को भी ध्यान में रखा गया है। कुल मिलाकर नियमित स्कूलों में न जा पाने वाली किशोरियाँ ध्यान के केन्द्र में हैं। इन बालिकाओं के के.जी.बी.वी. स्कूलों में आने से पहले एक ब्रिज कोर्स की आवश्यकता हो सकती है क्योंकि छोटी कक्षाओं में वे या

तो नामांकित ही नहीं हुई होंगी या अनुपस्थित रही होंगी या फिर इन कक्षाओं को बीच में छोड़ गई होंगी।

इन स्कूलों का मूल उद्देश्य है सीखने–सिखाने की प्रक्रिया, शिक्षक की मदद और सामुदायिक भागेदारी के साथ–साथ स्कूल और कक्षा का वातावरण मुहैया करवाते हुए समावेशी दृष्टिकोण से एक व्यक्ति का विकास करना। इन सबका लक्ष्य के.जी.बी.वी. स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर करने का है।

लेकिन कुछ रुकावटें भी हैं – जैसे, लिंग की परम्परागत परिभाषा और समाज में लड़कियों की भूमिकाओं पर उसका प्रभाव तथा बाल विवाह। प्रत्याशित परिणामों की राह में ये बड़ी बाधाएँ हैं। रीति–रिवाज और समुदायों की गरीबी जैसे सामाजिक–आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारण लड़कियों की शिक्षा के मूल्य को और अधिक प्रभावित करते हैं। इस सन्दर्भ में, लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर बहुत अधिक है, क्योंकि अधिकतर परिवार आय के सहायक साधनों की खातिर उन्हें कठिन श्रम के कामों में लगाए रखते हैं।

उच्च प्राथमिक शिक्षा हासिल करने में लड़कियों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें गरीबी, सूचना के उपयुक्त साधनों और स्वास्थ्य सम्बन्धी मसलों पर उपलब्ध जानकारियों तथा आवश्यक संसाधनों की कमी शामिल हैं जिसके चलते सामान्य रोग, अनीमिया, पोषक तत्वों का अभाव और मासिक धर्म की दिक्कतें सामने आती हैं। मासिक धर्म और उससे सम्बद्ध प्रथाएँ अब भी सामाजिक–सांस्कृतिक बन्दिशों में धुंधलाई हुई हैं जिसकी वजह से किशोरियाँ स्वच्छता आदि से सम्बन्धित तथ्यों से अनजान रहती हैं और इसका परिणाम कभी–कभी होता है स्वास्थ्य की समस्याएँ।

आवश्यकताएँ क्या हैं?

के.जी.बी.वी.स्कूलों के सन्दर्भ में बात करें तो सहायक वातावरण का अर्थ है इस प्रकार की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और भावनात्मक मदद जिसके दम पर ये नवयुवतियाँ विकसित हो पाएँ और एक सम्मानजनक, अर्थपूर्ण, उत्पादक तथा खुशी भरा जीवन जी पाएँ। इसका अर्थ है कि बेहतर गुणवत्ता के उपयुक्त कक्षा–कक्ष, होस्टल के कमरे और प्रयोग किए जाने काबिल शौचालय उपलब्ध हों। इनके साथ–साथ सीखने–सिखाने से सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री भी हो तो सही अर्थों में सहायक वातावरण बन सकता है। इसके अलावा आवश्यक अकादमिक मदद और मूल्यांकन तथा मॉनिटरिंग मुहैया करवाने के लिए उपयुक्त व्यवस्थाएँ भी हों ताकि लड़कियों को आवासीय स्कूल में आने के लिए और उनके परिवारों को उन्हें यहाँ भेजने के लिए तैयार और प्रेरित किया जा सके।

पाठ्यचर्या के उद्देश्य उन सामाजिक मूल्यों तथा जीवन के यथार्थों से सम्बद्ध होने चाहिए जिनका सामना लड़कियों द्वारा स्कूल के बाहर किया जाता है – उदाहरण के लिए जल की कमी जैसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं से शुरू होकर हिंसा तथा अन्य बहुआयामी चुनौतियों से सम्बद्ध मुद्दों की बात। महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि पाठ्यचर्या को किस प्रकार तैयार किया जाए कि लड़की के सामाजिक वातावरण और सन्दर्भ से सम्बोधित हुआ जा सके।

शिक्षकों को इस प्रकार शिक्षित किए जाने की आवश्यकता है कि वे स्वयं अपने व्यवहार में छुपे, प्रचलित भेदभावपूर्ण सन्देशों को चिह्नित कर पाने के लिए सशक्त हों। यह वे अपने दिन–प्रतिदिन के सम्प्रेषण में करके दिखा सकते हैं और बराबरी तथा न्याय के सन्दर्भ में लड़कियों की सोच के लिए कक्षा में एक आदर्श का काम कर सकते हैं। वे पाठ्यचर्या और शिक्षण पद्धतियों में उन पितृसत्तात्मक दृष्टिकोणों को चुनौती देने के लिए पहलकदमी ले सकते हैं जिनके परिणामस्वरूप हमारे मौजूदा समाज में असमानताएँ हैं। शिक्षक सीखने–सिखाने की ऐसी प्रासंगिक पद्धतियाँ भी प्रचलन में ला सकते हैं जो इन बच्चों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमियों तथा सीखने के विभिन्न स्तरों के लाभों और कमियों को सम्बोधित कर पाएँ।

ऐसा वातावरण विकसित करने के साधन

स्थानीय समूहों, गाँवों, स्वयंसेवियों और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शुभ चिन्तकों के सहयोग से एक ऐसी नई पीढ़ी को प्रशिक्षित करना जो इन बच्चों के समुदायों के साथ काम कर पाए और महिला शिक्षा के बारे में उनकी समझ में परिवर्तन ला पाए।

के.जी.बी.वी. स्कूलों के लिए लिंग के सन्दर्भ में संवेदनशील रवैया अपनाने की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में, आवश्यक है कि इस योजना को चलाने का दायित्व बहुत ही ध्यान से चिह्नित की गई गैर–सरकारी संस्थाओं को दिया जाए। बेहतर होगा कि इन संस्थाओं द्वारा चिह्नित किए गए शिक्षक उन समुदायों की पृष्ठभूमि से ही हों जिनसे बच्चे आते हैं ताकि वे मुद्दों को सुसंगत तरीके से समझ पाएँ, और सामाजिक स्तर पर उनकी स्वीकृति हो। उनकी उपस्थिति के.जी.बी.वी. स्कूलों के उद्देश्यों को अनदेखा किए बिना समुदाय के साथ अच्छे सम्बन्ध

स्थापित करने में भी मददगार होगी, विशेष तौर से व्यवसाय सम्बन्धी दक्षताएँ प्रदान करने तथा स्वास्थ्य और पोषण सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में।

इन लड़कियों को खेल और शारीरिक शिक्षा में भी सहायता चाहिए होगी ताकि उनका आत्मविश्वास बढ़े और क्षमताओं का विकास हो, जिनकी आवश्यकता उन्हें अपने जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में पड़ती है। इन स्कूलों में विद्यार्थियों को कला और सौन्दर्यशास्त्र से भी परिचित करवाया जा सकता है ताकि वे अपनी रचनात्मकता को खँगालने के लिए प्रेरित हों और अपने नए जीवन को ताजा प्रयोगों और खोजों से निर्मित करें।

कुछ संस्तुतियाँ जो भविष्य में अपेक्षित परिवर्तन ला सकती हैं, इस प्रकार हैं –

मासिक धर्म से सम्बद्ध स्वच्छता के बारे में जागरूकता

किशोरियों को इन स्कूलों में मासिक धर्म सम्बन्धी स्वच्छता के बारे में शिक्षित करना एक महत्त्वपूर्ण कारक है। उपयुक्त प्रशिक्षण में पैड्स के प्रयोग और व्यवस्था, प्रजनन–क्षेत्र में रोग–संक्रमण आदि से सम्बद्ध पक्ष शामिल रहने चाहिए।

सुरक्षित और दोस्ताना माहौल का होना

स्कूल में किशोरियों को एक सुरक्षित, मैत्रीपूर्ण, निजी और विश्वसनीय माहौल मिलना चाहिए। इसमें पर्याप्त जल, साफ–सुथरे स्नानगृह, व्यक्तिगत बिस्तर और अलग कमरा शामिल हैं ताकि स्वच्छता सुनिश्चित की जा सके। इसके अलावा भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर लड़कियों की सहायता के लिए स्वास्थ्य और परामर्श कैम्प लगने चाहिए ताकि वे लम्बे दौर में निर्णय ले पाएँ। बाल स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए नियमित तौर पर सघनता से काम करने वाले मंचों के तौर पर सुनियोजित स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम बनने और लागू होने चाहिए। इनके अलावा पोषक आहार और योग कक्षाएँ भी स्वस्थ ताजगी भरे जीवन के लिए आवश्यक हैं।

अन्त में, के.जी.बी.वी. स्कूलों में स्वास्थ्य और स्वच्छता से सम्बन्धित मुद्दों के बारे में ज्ञान और जानकारी से सम्बद्ध बहुत–सी बातों के लिए तो शिक्षकों और वार्डन की ओर से दोस्ताना हस्तक्षेप की ही आवश्यकता होगी। व्यक्तिगत गोपनीयता को सुनिश्चित करना होगा क्योंकि बहुत–सी समस्याएँ तो इसकी कमी के चलते ही पैदा होती हैं। सब तथ्य किशोरियों में स्वास्थ्य तथा स्वच्छता सम्बन्धी सुरक्षित और सतर्क प्रथाओं को बढ़ावा देने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं ताकि उन्हें मासिक धर्म और उससे सम्बद्ध मुद्दों से जुड़ी भ्रान्तियों और बन्दिशों से बाहर लाया जा सके।

निर्मला वी.जी. पिछले एक वर्ष से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, कर्नाटक के यादगीर जिला संस्थान में स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं। वर्तमान में वे यादगीर जिले में किशोरियों के लिए कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय के साथ स्वास्थ्य और स्वच्छता पर ध्यान केन्द्रित करते हुए काम कर रही हैं। वे कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ से राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर हैं और बेंगलूरु विश्वविद्यालय से मानव संसाधन प्रबन्धन में डिग्री–प्राप्त। वे पिछले 12 सालों से महिला और बाल विकास, स्वास्थ्य, आजीविका तथा मानव संसाधन समेत कई क्षेत्रों में विकास सम्बन्धी कामों में सक्रिय रही हैं। उनसे nirmala.vg@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन



विद्यार्थियों
की
आवाज



इन्वेंचरिंग सप्ताह

अनन्या रामगोपाल

जब मैंने पहली बार इन्वेंचर एकेडमी के हॉल में कदम रखा तो मैं बेहद घबराई हुई थी। एकदम नए शहर के बिलकुल नए स्कूल में नवीं कक्षा में दाखिला लेना किसी के लिए भी काफी तनावपूर्ण अनुभव हो सकता है। और फिर मैंने पहली बार अपनी कक्षा में प्रवेश किया, यह वही कक्षा थी जो जल्द ही मेरी पसन्दीदा जगह बनने वाली थी। यहाँ पर मैंने देखा कि बहुत सारे विद्यार्थी एक–दूसरे को घेरकर गपशप कर रहे थे और कैफीन पर मँडरा रहे छोटे बच्चों की तरह ऊँची आवाजें निकाल रहे थे। एक नई छात्रा के लिए इससे अधिक डरावना दृश्य नहीं हो सकता था। अब मैं उनके इलाके में थी और मुझे पता ही नहीं चल रहा था कि मुझे क्या करना चाहिए।

पर मेरे लिए यह सौभाग्य की बात थी कि इन्वेंचर अन्य स्कूलों की तरह नहीं है। यहाँ साल के शुरू में ही कामकाज शुरू नहीं कर दिया जाता। विद्यार्थियों को इस बात का पर्याप्त समय दिया जाता है कि वे अपने को स्कूल के वातावरण के अनुसार ढाल सकें बनिस्बत इसके कि उन्हें स्कूल की दिनचर्या में सीधे ही धकेल दिया जाए। इसके परिणाम स्वरूप "इन्वेंचरिंग" के विचार ने जन्म लिया, जिसके तहत विद्यार्थियों को कुछ मजेदार गतिविधियों के माध्यम से एक–दूसरे को जानने का अवसर दिया जाता है और इसके लिए आमतौर पर कला सम्बन्धी किसी बड़े प्रॉजेक्ट को हाथ में लिया जाता है। इस प्रॉजेक्ट के पीछे निहित विचार यह है कि विद्यार्थी अपने काम की प्रगति को देखें, आगे की योजना बनाएँ और अपने काम के पूरा होने के बाद मिलने वाली सन्तुष्टि को महसूस करें। विद्यार्थियों को सम्भावित विविध प्रॉजेक्टों की विस्तृत सूची दी जाती है, जिसमें से वे अपना पसन्दीदा प्रॉजेक्ट चुन सकते हैं। पिछले साल हमें जो विकल्प दिए गए थे वे इस प्रकार थे– चिड़ियों के लिए घर बनाना, भित्ति चित्र बनाना, बगीचे की सजावट करना आदि। मैंने चिड़ियों का घर बनाने वाला प्रॉजेक्ट चुना। मुझे दूसरे 10 बच्चों के समूह में रखा गया जिसमें अलग–अलग कक्षाओं के बच्चे थे और उन्हें भी मेरे प्रॉजेक्ट पर ही काम करना था। हालाँकि जब मैंने चिड़ियों के लिए घर बनाने का प्रॉजेक्ट चुना तो मुझे लगा था कि यह बहुत आसान होगा लेकिन ऐसा बिलकुल नहीं था। वास्तव में हमें इसके लिए बहुत सारी योजना बनानी पड़ी कि कौन–कौन सी सामग्री चाहिए, डिजाइन कैसा होगा, किस विशेषज्ञ की राय लेनी होगी और किसकी मदद की जरूरत पड़ेगी। अपने प्रॉजेक्ट की कच्ची योजना बनाने के बाद हम उसे कार्यान्वित करने को तत्पर हुए। यहाँ हमें इस सच्चाई का एहसास हुआ कि चिड़ियों का घर बनाने के लिए की गई दुनिया भर की तैयारी भी काफी नहीं थी। इसके कारण सामने आने वाली समस्याओं को हल करने का हमारा कौशल प्रखर हुआ, हम असफल नहीं होना चाहते थे और इस कोशिश में हमें एहसास हुआ कि साथ में मिल–जुलकर काम करना, एक–दूसरे पर निर्भर होना और भरोसा करना कितना महत्त्वपूर्ण है। इस सबके बाद सप्ताह के अन्त में मानो एक चमत्कार हुआ और हम अपने पूर्ण रूप से निर्मित व सुन्दर चिड़ियों के घर को बड़ी प्रशंसापूर्ण नजरों से निहार रहे थे। लेकिन मैंने उस पूरे सप्ताह में केवल यही काम नहीं किया था बल्कि इस प्रक्रिया में अनजाने ही मैंने कई अच्छे दोस्त बना लिए थे और अब मैं अपने को एक अजनबी जैसा नहीं महसूस कर रही थी।

इन्वेंचरिंग सप्ताह का समापन कक्षा 4–10 के विद्यार्थियों के लिए शुक्रवार को स्लीपओवर से होता है। यह स्लीपओवर सदा ही इन्वेंचरिंग का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है। एक नई छात्रा के रूप में मेरे लिए यह अनुभव अद्भुत था, क्योंकि मैंने नए लोगों को केवल हफ्ते भर के

लिए ही जाना था। यह अनुभव मेरी उम्मीदों से कहीं बढ़कर था और मैं चाहती थी कि यह अनुभव बार–बार हो। फिर चाहे वह सूरज के उगने तक गपशप करना हो या आधी रात तक आँगन में नाचना हो, इस इन्वेंचरिंग में सबके लिए कुछ न कुछ अवश्य था। अगले दिन जब मैं घर लौटी तो मुझे लगा कि मैं इन्वेंचर की ही सदस्या हूँ और मैं खुद को उसका हिस्सा समझने लगी।

वैसे तो मुझे लगता है कि समय के साथ–साथ इन्वेंचरिंग के बिना भी मैं स्कूल में दोस्त बना लेती। लेकिन उस एक हफ्ते में मुझे वह सब कुछ मिला जिसकी मुझे उस वक्त जरूरत थी। मुझमें आत्मविश्वास पैदा हुआ, काम को हाथ में लेने का जज्बा जागा और साथ ही मैंने समूह में काम करना भी सीखा। इसने मुझे रचनात्मक बनने और नवाचार करने को तो प्रोत्साहित किया ही, साथ ही खुद को चुनौती देने और इतने सालों में अर्जित किए कौशलों का उपयोग करना भी सिखाया। सबसे ज्यादा मजेदार बात तो यह थी कि मेरा समय बहुत अच्छी तरह से बीता और मैंने कुछ अच्छे दोस्त भी बनाए। इस पूरे अनुभव के लिए मैं सदा इन्वेंचर की आभारी रहूँगी। अब, एक साल के बाद भी मैं अपने इन्वेंचरिंग अनुभव को बहुत प्यार से याद करती हूँ।

अनन्या रामगोपाल इन्वेंचर एकेडमी, बेंगलूरु की छात्रा हैं। उनसे ananya.ramgopal@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल



पहले कदम

अंकिता कोडवूर



मैं ने विद्या निकेतन स्कूल के फाटक की ओर देखा जो मुझे अपने भीतर आने का निमन्त्रण दे रहा था। मैंने धीरे–धीरे उस ओर कदम बढ़ाए, यह सोचते हुए कि जीवन का यह मुकाम मेरे लिए जाने क्या लेकर आने वाला है। तभी एक हँसमुख लड़की ने मुस्कुराकर मुझसे हाथ मिलाया और "गुड मॉर्निंग" कहकर मेरा अभिवादन किया। वह हर विद्यार्थी का इसी उत्साह के साथ अभिवादन कर रही थी। मुझे इस बात से आश्चर्यजनक प्रसन्नता हुई और पता चला कि यह तो विद्या निकेतन की परम्परा थी।

हालाँकि मैं इस स्कूल में नई थी पर मुझे महसूस हुआ कि मानो स्कूल की हल्की पीली दीवारों से लेकर लोगों को मुस्कुराकर स्वीकार करने की प्रक्रिया में एक प्यार भरी गर्माहट व्याप्त थी। स्कूल के कोने–कोने से आशा की चमक झलक रही थी; मुझे लगा कि अपनी स्कूली शिक्षा के अन्तिम वर्ष बिताने के लिए ऐसा वातावरण अत्यन्त आदर्श था।

यहाँ अनुशासन को बहुत महत्त्व दिया जाता है लेकिन इसके लिए विद्यार्थियों में निहित सम्भावनाओं को न तो अवरुद्ध किया जाता है और न ही दबाया जाता है। यह एक ऐसा स्थान है जहाँ विचारों की स्वतन्त्रता है लेकिन वे नियन्त्रण की सीमा के बाहर नहीं हैं। एक नई बात और भी थी–कक्षा में स्मार्टबोर्ड्स का उपयोग जिनकी सहायता से कक्षा में व्यापक गतिविधियाँ करवाने का अवसर मिलता है। वैसे तो अधिकतर लोग यह मानते हैं कि पाठ्यपुस्तकों से पढ़ाना चाहिए लेकिन अगर हम उनके परे न जाएँ तो हम एक बेहद मामूली और प्रतिबन्धों से घिरी हुई दुनिया में फँसकर रह जाएँगे। हमारे शिक्षकों की खुले दिमाग वाली प्रकृति बहुत प्रेरणाप्रद है और इसकी वजह से अक्सर कक्षा में एक स्वस्थ चर्चा को प्रोत्साहन मिलता है। कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या कम होने के कारण पूरी कक्षा को चर्चाओं में भाग लेने का मौका मिलता है। यहाँ पर मैं उसी पुरानी बात को दोहराना चाहूँगी कि "सिर्फ काम करते रहने और जरा भी न खेलने से जैक एक सुस्त लड़का बनेगा।"

विद्या निकेतन में अकादमिक और अन्य विषयों को समान स्थान दिया जाता है। चूँकि यहाँ खेल सम्बन्धी गतिविधियों, अन्तर–स्कूल कार्यक्रमों और मॉडल UN (MUN) तथा वाद–विवाद आदि का आयोजन होता ही रहता है इसलिए मैं यह कह सकती हूँ कि हम यहाँ "सुस्त" बन ही नहीं पाते। अगर हम अपने पुस्तकीय ज्ञान को जीवन में लागू न कर पाएँ तो हमारा सीखना बेकार है। बढ़ने और सीखने की जटिलता के साथ–साथ जवाबदेही की जिम्मेदारी भी आती है। स्कूल में विभिन्न उत्सवों, कार्यक्रमों और MUN के आयोजन की जिम्मेदारी हमें दी जाती है। इनसे हमें अपना आत्मविश्वास बढ़ाने का अवसर मिलता है। इस तरह के आयोजन करने से हमारी रचनात्मकता और नेतृत्व के गुण सामने आते हैं।

हमारा स्कूली जीवन पढ़ाई और अन्य बातों के साथ–साथ हमारे साथियों और शिक्षकों के चारों ओर भी केन्द्रित रहता है। हमें इस बात से बहुत राहत मिलती है कि यहाँ के

शिक्षकों के साथ हम अपने सुख–दुख बाँट सकते हैं, ये शिक्षक हमारी परवाह करते हैं और हम उनके पास जब चाहें तब आसानी से जा सकते हैं। अकसर हम अपनी मानसिक उलझनों के कारण यह भूल जाते हैं कि हम अपने साथियों के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं। विद्या निकेतन में साझा करने का विचार बेहद गहराई के साथ निहित है। हम अपनी साप्ताहिक कक्षाओं में अपने विचार साझा करते हैं। इन सत्रों में हमारे काफी मानसिक संकोच या अवरोध दूर हो जाते हैं और पूरी कक्षा एक दूसरे की बात सुनती है। हमारे जीवन–कौशल वाले शिक्षक हमें ऐसा हर मौका देते हैं जिसमें हमें जीवन के किसी नए पहलू के बारे में गहन रूप से सोच–विचार करने को मिले। जीवन के संवेदनशील मुद्दों, जैसे कि दूसरों को डराना–धमकाना, आदि को जिस तरीके से और तुरन्त ही निपटाया जाता है; वह मुझे बहुत अच्छा लगता है।

स्कूल एक ऐसा स्थान है जहाँ हम सीखते हैं; फलते–फूलते हैं। हम अपने आने वाले वयस्क जीवन (जो कि जल्द ही आ जाता है) में जैसा बनने वाले होते हैं, स्कूली जीवन हमें उस साँचे में ढालता है। John Ciardi के अनुसार, "कक्षा दुनिया में प्रवेश करने का द्वार होना चाहिए न कि उससे पलायन का", और मैं इस बात से पूर्णतः सहमत हूँ।

अंकिता कोडवूर विद्या निकेतन स्कूल, बेंगलूरु की छात्रा हैं। उनसे anki.kodavoor@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल



शिक्षक

बना भी सकते हैं, और बिगाड़ भी

गुरुराज, के. एस.

किण्डरगार्टन से दसवीं कक्षा तक की मेरी शिक्षा कर्नाटक के धारवाड़ में एक अँग्रेजी माध्यम के निजी स्कूल में हुई, जहाँ सह–शिक्षा थी।

हमारा स्कूल लड़कियों के एक दशक पुराने कन्नड़ माध्यम उच्च विद्यालय की इमारत में शुरू हुआ। मुझे याद है कि जब मैं कक्षा–8 में था, हम उसी कैम्पस में अपने विद्यालय की इमारत में आ गए थे।

हमारे विद्यालय में शिक्षा के लिए अनुकूल कई कारक थे – जैसे, पर्याप्त संख्या में शिक्षक, अच्छे हवादार कमरे, एक बड़ा खेल का मैदान, खुली जगह, पीने के पानी और शौचालय की व्यवस्था। विद्यालय घर के समीप ही था और फीस भी बहुत अधिक नहीं थी।

हमारा विद्यालय बैंकिंग कॉन्सेप्ट ऑफ एजुकेशन यानी "शिक्षा की बैंकिंग अवधारणा" का अनुसरण करता था – यह शब्दावली प्रारम्भिक बीसवीं सदी के ब्राजील के शिक्षक और दार्शनिक पाओलो फ्रेरे द्वारा प्रचलित की गई थी। इस अवधारणा के तहत विद्यार्थियों से तो बस यह अपेक्षित था कि जो भी दिया जाए उसे स्वीकार कर लें, फाइल करके रख लें (उसी प्रकार जैसे एक बैंक में मुद्रा जमा की जाती है)। इस सोच के तहत शिक्षक को 'जमाकर्ता' और विद्यार्थी को 'जमा करने का स्थान' मान लिया जाता है। विद्यालय में हमसे इसके अलावा एक और काम करना अपेक्षित था – इम्तिहान में याददाश्त के आधार पर लिखकर आना।

साल में चार परीक्षाएँ हुआ करती थीं – त्रैमासिक, मध्यावधि, तीसरा त्रैमासिक और अन्तिम परीक्षा। परीक्षाओं में हासिल अंकों के आधार पर विद्यार्थियों को रैंक/दर्जे दिए जाते थे। और इन रैंक्स/दर्जों के आधार पर विद्यार्थियों को 'बुद्धिमान' और 'मन्दबुद्धि' करार दिया जाता था। पहली तीन परीक्षाओं में विद्यार्थी कुछ विषयों में अनुत्तीर्ण रह सकते थे मगर अन्तिम परीक्षा में उनसे अपेक्षित था कि अगली कक्षा में दाखिल हो पाने के लिए वे सब विषयों में उत्तीर्ण हों।

मैं कक्षा–8 में पहुँचा तो 'ए' और 'बी' सेक्शन को मिलाकर एक सेक्शन बना दिया गया। अब हमारी कक्षा का विद्यार्थी–शिक्षक अनुपात 56 पर 1 हो गया।

कक्षा–8 के विद्यार्थी के पास विषयों के दो संयोजन उपलब्ध थे – जो विद्यार्थी संस्कृत को प्रथम भाषा के तौर पर चुनते थे, उन्हें दूसरी भाषा के रूप में अँग्रेजी और तीसरी भाषा के तौर पर कन्नड़ लेनी होती थी; अँग्रेजी को प्रथम भाषा के तौर पर लेने वाला विद्यार्थी कन्नड़ को दूसरी और हिन्दी को तीसरी भाषा के तौर पर लेता था। गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान जैसे बाकी सब विषयों के लिए हम सब एक ही कक्षा में बैठते थे।

अध्यापन को एक श्रेष्ठ, गौरवपूर्ण पेशा माना जाता है। शिक्षक की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है – अपने विद्यार्थियों को आलोचनात्मक चिन्तक के रूप में विकसित करने की भूमिका; उन्हें जिम्मेदार और सक्षम नागरिक के रूप में विकसित करने वाली शिक्षा देने की भूमिका, ताकि वे समाज के सामान्य हित को बनाए रखने और उसकी बेहतरी के लिए आवश्यक विभिन्न तरह के काम कर पाएँ।

मुझे कक्षा–8 के अपने दो शिक्षक याद हैं – एक तो गलत कारणों से और दूसरा अच्छे कारणों से।

हमारे एक गणित के अध्यापक थे जिन्हें पास के ही एक लड़कों के स्कूल में यह विषय पढ़ाने का कुछ सालों का अनुभव था। वे हमारे प्राचार्य के छोटे भाई भी थे। लगातार सिगरेट पीने वाले ये शिक्षक विद्यार्थियों को नए–नए तरीकों

से शारीरिक कष्ट देने के लिए मशहूर थे। घर का कार्य पूरा करके न लाने वाले और परीक्षा में कम अंक लेने वाले विद्यार्थी उनका निशाना बनते थे। उनके द्वारा दिए जाने वाले दण्ड केवल लड़कों के लिए हुआ करते थे और ये दण्ड अचानक, बिना चेतावनी दिए जाते थे।

दण्डित करने के तरीकों में पेट की चर्बी को पकड़कर मरोड़ना, दीवार पर सिर टकराना, लकड़ी का फुटा हाथ की उँगलियों के पोरों/गाँठों पर मारना (कई बार तो तब तक जब तक फुटा टूट न जाए), सबक पर ध्यान न देने वाले विद्यार्थियों पर निशाना लगाकर चॉक और डस्टर मारना शामिल थे। परीक्षा के लिए वे दो प्रश्न–पत्र बनाते थे – एक पढ़ाई में अच्छे विद्यार्थियों के लिए, दूसरा बाकी सबके लिए। इस सबके चलते हैरत नहीं कि मेरे अधिकतर सहपाठी उनकी कक्षा में जाने से बहुत बुरी तरह डरते थे।

दूसरी शिक्षक, जिन्हें मैं अच्छे कारणों से याद करता हूँ, हमें अँग्रेजी और कन्नड़ पढ़ाती थीं। मैं उन्हें उनके ज्ञान, मार्गदर्शन और विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने की आदत की वजह से याद करता हूँ।

मुझे अच्छी तरह याद है कि किस प्रकार उन्होंने भगवान राम की उपासक शबरी पर एक कन्नड़ कविता पढ़ाई थी। उन्होंने अपनी भाव–भंगिमा और काव्य–पाठ से कविता को जीवन्त बना दिया था। हमें मालूम था कि वे कन्नड़ में इतना सहज महसूस नहीं करती थीं जितना अँग्रेजी में, लेकिन कक्षा में वे हमेशा पूरी तैयारी के साथ आती थीं।

अँग्रेजी की कक्षा में हमें अँग्रेजी पाठ्यपुस्तकों से कुछ अनुच्छेद पढ़ने को कहा जाता था। वे हमें अँग्रेजी बोलने के लहजे पर अभ्यास करवातीं, सलाह देतीं कि अपने पठन को किस प्रकार असरदार बनाया जा सकता है। 'निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाएँ' वाला अभ्यास करने में वे हमें नवाचारी होने के लिए प्रोत्साहित करती थीं। उनकी कक्षाएँ आनन्ददायक होती थीं क्योंकि वे हाजिरजवाब चुटकुले भी सुनाया करती थीं।

अब लगभग तीस साल बाद भी इस प्रेरणादायी शिक्षिका के प्रशंसा के शब्द मुझे याद हैं।

मेरी दो बेटियाँ बेंगलूरु के एक लोकप्रिय निजी विद्यालय में पढ़ती हैं, जहाँ प्रवेश पाना कठिन है और फीस भी काफी अधिक है। मैं राज्य शिक्षा बोर्ड की पाठ्यचर्या से पढ़ा था जबकि वे सी.बी.एस.ई. पाठ्यचर्या के तहत पढ़ रही हैं। मैंने देखा है कि रैंक/दर्जे की बजाए अब ग्रेड मिलते हैं, जिनमें 'ए+' सबसे बेहतर होता है और 'ई' सबसे निम्न स्तर का। परीक्षाओं के स्थान पर निरन्तर एवं समग्र मूल्यांकन आ गया है। सभी सेमेस्टर में 'ए+' प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के नाम स्वागत–कक्ष में प्रदर्शित किए जाते हैं। अभिभावक–शिक्षक बैठक में कई बार शिक्षक बच्चे के सामने ही उसकी प्रगति के बारे में चर्चा करते हैं।

'डी' तथा 'ई' ग्रेड प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को प्रत्येक शनिवार सुधार के लिए विशेष कक्षाएँ लगानी होती हैं। अन्य विद्यार्थियों की मौजूदगी में कक्षा में उनके नाम बोले जाते हैं। इससे बच्चों पर दबाव बढ़ता है। '3 ईडिअट्स' फिल्म में आमिर खान का कथन कि 'ग्रेड विभाजन पैदा करते हैं', यहाँ सच होता दिखाई देता है।

मुझे अपने बच्चों और उनके सहपाठियों से जानकारी मिलती है कि विद्यालय में शारीरिक दण्ड दिया जाता है। कान मरोड़ना, फुटे से पीटना, थप्पड़ मारना, किताब को सिर पर मारना, हाथ की अँगूठी से सिर पर चोट मारना और चॉक मारना तो सामान्य तौर पर किया ही जाता है। अनुशासन के नाम पर कई शिक्षक कक्षा में डर का माहौल पैदा कर देते हैं और विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने से हतोत्साहित करते हैं। बहुत से शिक्षकों का एक ही उद्देश्य होता है – पाठ्यक्रम को पूरा करना।

प्रत्येक बच्चा अद्वितीय है और अलग तरह से सीखता है। बच्चों को प्रशंसा और प्रोत्साहन मिले तो वे प्रसन्न रहते हैं, उनमें आत्मविश्वास विकसित होता है और वे बेहतर तरीके से सीखते हैं।

एक शिक्षक बना भी सकता है और बिगाड़ भी सकता है।

References

Freire, Paulo. Pedagogy Of The Oppressed. New York : Continuum, 2000. Print.
http://journal.kfionline.org/issue-11/knowledge-and-dialogue-in-education

गुरुराज पिछले साढ़े पाँच साल से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ काम कर रहे हैं। वर्तमान में वे कर्नाटक राज्य संस्थान के पुस्तकालय और गतिविधि केन्द्र की देख–रेख कर रहे हैं। वे कम्प्यूटर विज्ञान इंजिनियरिंग तथा पुस्तकालय और सूचना विज्ञान में स्नातक डिग्रीधारक हैं। वे फाउण्डेशन में बेंगलूरु विश्वविद्यालय से आए। उनसे gururaj@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन



दुविधा में पड़ी छात्रा की कलम से

संविदा एस. वेंकटेश

कल मेरे एक जूनियर ने मुझसे फोन पर कहा," संविदा, कल मेरी भौतिकशास्त्र की परीक्षा है और मुझे उसमें एक बात समझ में नहीं आ रही है। क्या तुम मेरी मदद करोगी?" मुझे उसकी मदद करने में बड़ी खुशी हुई। मैंने उसके साथ उस प्रश्न पर कुछ देर तक चर्चा की। जब हम एक ऐसी अवधारणा पर आए जिसे अभी उसने सीखा नहीं था तो मैं उसे उसके बारे में समझाने लगी। लेकिन उसने मुझे बीच में ही यह कहकर रोक दिया कि, "कोई बात नहीं, हमें यह नहीं सिखाया गया है और यह प्रश्न परीक्षा में नहीं पूछा जाएगा।" उसने बड़े आत्मविश्वास के साथ मुझसे यह बात कही। मैंने फोन रख तो दिया लेकिन मेरा मन काफी बेचैन हो गया।

"यह परीक्षा के पोर्शन (परीक्षा के लिए तय पाठ्यवस्तु) में नहीं है," मेरे हिसाब से यह वाक्य हमारी शिक्षा प्रणाली के सबसे बड़े दोष का प्रतीक है– जो यह इंगित करता है हम सिर्फ परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए सीखते हैं।

मैं अपने कोर्स के अर्ध सत्र में हूँ। मेरे सहपाठी रात–रात भर भौतिकशास्त्र के सवाल और अकार्बनिक रसायनशास्त्र की पुस्तकें लेकर बैठे रहते हैं। और मैं? विज्ञान की छात्रा होने के बावजूद खान एकेडमी के विश्व इतिहास और मैक्रोइकोनॉमिक्स के वीडियो देख रही हूँ क्योंकि मुझे वे बहुत आकर्षक लगते हैं। लेकिन इसका सबसे भयानक पहलू यह है कि इसके लिए मैं खुद को यह बार–बार यह कहकर सजा दे रही हूँ कि,"संविदा, यह सब टेस्ट में नहीं आएगा, कृपया जाओ और जाकर कुछ उपयोगी काम करो।" शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि मैं कुछ सीखूँ, न कि यह कि मैं टेस्ट में उत्तीर्ण हो जाऊँ, लेकिन फिर भी मैं खुद को कल होने वाली किसी टेस्ट या अगले महीने होने वाली किसी परीक्षा के लिए सीखता हुआ पाती हूँ।

लेकिन यह रवैया जन्मा कहाँ से? हर दिन यह बात मेरी कक्षा और घरों में चारों ओर तेजी से बढ़ती हुई नजर आती है। इसकी शुरुआत बहुत छोटे से रूप में होती है जैसे कि जब कक्षा में किसी मित्र के सामने कोई अपनी शंका रखता है तो जवाब मिलता है,"चिन्ता मत करो, यह हमारे पोर्शन में नहीं है।" जब शिक्षक पूछते हैं कि क्या किसी टॉपिक के बारे और अधिक गहराई से बताया जाए तो जवाब मिलता है, "मैडम, पाठ्यपुस्तक में तो चार लाइनें ही दी गई हैं, ज्यादा गहराई में जाने से हम गड़बड़ा जाएँगे।" जब जीवविज्ञान की कोई छात्रा कहती है कि वह अपने "आनन्द" के लिए कम्प्यूटर प्रोग्राम लिखती है तो उसे बहुत जिज्ञासा और प्रतिकूल नजरों से देखा जाता है, जो बड़े अफसोस की बात है। लेकिन बात यहाँ रुकती नहीं और आगे बढ़ती है। शिक्षक विद्यार्थियों को निर्धारित पाठ्यक्रम के बाहर के विषयों के बारे में बताने से मना करते हैं। माता–पिता आपको अपने चुने हुए विषयों से सम्बन्ध न रखने वाले विषय पढ़ने नहीं देते। अगर आप JEE के अभिलाषी हैं तो आपके कोचिंग इंस्टिट्यूट्स आपको जीवविज्ञान, अर्थशास्त्र, वास्तुकला और ऐसे ही अन्य बीसीयों विषयों की पुस्तकों से दूर रखते हैं। आपको इसका कारण यह बताया जाता है कि, "ऐसा हम इसलिए करते हैं ताकि आप अपना ध्यान केन्द्रित रख सकें।" ध्यान किस पर केन्द्रित करना है? परीक्षा में अच्छे प्रदर्शन पर।

तो मेरे लिए स्कूल का सबसे अक्षम वातावरण वह है जिसमें केवल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए पढ़ाई करने या सीखने पर जोर दिया जाए। मैं विद्यार्थियों (जिनमें मैं भी शामिल हूँ) को इस बात के लिए दोषी नहीं ठहरा सकती कि वे केवल परीक्षा में उत्तीर्ण होने की खातिर पढ़ते या सीखते हैं। ये टेस्ट ही आपके कॉलेज, आपके पेशे और

अन्ततः आपकी जीवन–शैली को तय करते हैं। लेकिन ऐसा होना नहीं चाहिए। सोलह साल की उम्र में आप जो टेस्ट लिखते हैं, उन पर आपका भविष्य निर्भर नहीं होना चाहिए। किसी एक टेस्ट में प्राप्तांकों के आधार आपके कॉलेज को आपके बारे में निर्णय नहीं लेना चाहिए। आपके भावी मालिक को आपके कॉलेज के GPA के आधार पर आपको नौकरी नहीं देनी चाहिए।

मैं यह नहीं कह रही कि टेस्ट होने ही नहीं चाहिए। इसके बिना जो गड़बड़ी पैदा होगी उसके बारे में सोचकर ही डर लगता है। पर हमें परीक्षण के प्रभावी तरीकों को खोजना है। जरूरी नहीं कि "टेस्ट" परीक्षा भवन में तीन घण्टों के भीतर कड़ी निगरानी में संचालित किए जाएँ। हमें टेस्ट व परीक्षाओं, अधिगम से उनके सम्बन्ध और अन्ततः हम उन्हें कितना महत्त्व दें–इन सबके बारे में अपनी सोच को विस्तृत करना होगा।

अपनी शिक्षा प्रणाली की शिकायत करना आसान है लेकिन उसकी तारीफ करना बहुत कठिन है। जब भी मुझसे अपने स्कूल के वातावरण के बारे में पूछा जाता है तो भारतीय स्कूली पद्धति की उपज (या यूँ कहूँ कि शिकार) होने के नाते मैं लगभग हमेशा ही उसकी निन्दा करती हूँ। लेकिन क्या मेरे द्वारा की गई शिकायतों की वजह से ही प्रणाली का विकास नहीं होता? जब तक मुझ जैसे विद्यार्थी इन दुविधाओं के बारे में बताएँगे नहीं, तब तक सब कुछ आकर्षक ही लगेगा और कुछ भी बदलेगा नहीं। शिक्षा प्रणाली को किसी स्थिर तालाब जैसा नहीं अपितु बहती हुई नदी जैसा होना चाहिए ताकि वह अपने बनाए हुए समाज की माँगों को पूरा करने के लिए हमेशा विकासशील बनी रहे।

संविदा नेशनल पब्लिक स्कूल, बेंगलूरु की छात्रा हैं। उनसे samvida.venkatesh@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल



Azim Premji University

Publications that discuss key themes & issues in school education

For Teachers | Teacher Educators | Researchers | Education Administrators & everyone passionate about education.

Learning Curve

A theme-based publication focussing on topics of current relevance to the education sector



Individual articles from earlier issues of the Learning Curve can be downloaded from **http://teachersofindia.org/en/periodicals/learning-curve**

To find out more or order a printed copy of the earlier issues or the upcoming one, e-mail your postal address and the issue number to **learningcurve@azimpremjifoundation.org**

At Right Angles

A resource for school mathematics



Individual articles from earlier issues of At Right Angles can be downloaded from **http://teachersofindia.org/en/periodicals/at-right-angles**

To find out more or order a printed copy of the earlier issues or the upcoming one, e-mail your postal address and the issue number to **AtRightAngles@apu.edu.in**

Language and Language Teaching

A publication focusing on issues and practices relevant to language teaching

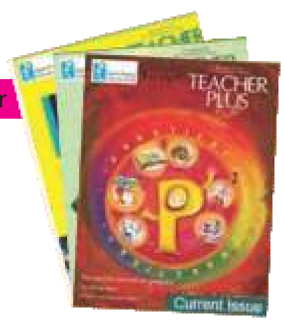


Earlier issues of Language and Language Teaching can be downloaded from **http://www.azimpremjiuniversity.edu.in/content/publications**

To subscribe or find out more write to **jourllt@gmail.com**

Teacher Plus

A monthly magazine packed with ideas and addressing the concerns of the practicing teacher



Teacher Plus can be accessed online at **http://www.teacherplus.org/**
To subscribe or find out more write to editorial@teacherplus.org

Exchanging Experiments and Experiences in Education

अगला अंक

प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा



No. 134, Doddakannelli
Next to Wipro Corporate Office
Sarjapur Road, Bangalore - 560 035. India
Tel: +91 80 6614 4900/01/02 Fax: +91 806614 4903
E- mail: learningcurve@azimpremjifoundation.org
www.azimpremjifoundation.org

Also visit Azim Premji University website at
www.azimpremjiuniversity.edu.in

Azim Premji University
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

For suggestions or comments and to share your views or personal experiences, do write to us at
learningcurve@azimpremjifoundation.org

Earlier Issues of the Learning Curve may be downloaded from
http://azimpremjifoundation.org/Foundation_Newsletters or
http://www.azimpremjiuniversity.edu.in/content/publications